ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

जुलाई २०१७

Date of Printing = 05-7-17
प्रकाशन दिनांक= 05-7-17

वर्ष ४६ : अङ्क ६
दयानन्दाब्द : १९३
विक्रम-संवत् : ज्येष्ठ-आषाढ़, २०७४
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११८

संस्थापक : **स्व० ला० दीपचन्द आर्य**
प्रकाशक व
सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११६१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु०
वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस लेख में

- शास्त्रार्थ २
- वेदोपदेश ३
- कठोपनिषद् की कथा ५
- आतंकवाद और साम्प्रदायिकता ८
- ओहो! वह समर्पण भाव १०
- गणतंत्र में गनतंत्र.... १३
- धर्म के नाम पर.... १४
- गुरु विरजानन्द..... १७
- वानप्रस्थ, आश्रम...... २०
- दलित उद्धारक.... २१
- महर्षि दयानन्दाभिमत..... २४

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण **३००० रुपये सैकड़ा**
स्पेशल (सजिल्द) **५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।**

राम के प्रति आस्था को दर्शाने के लिए ही कहा गया है। उसी दृश्य को साकार किया सरदार अर्जुन सिंह ने। महर्षि दयानन्द के हाथ यज्ञोपवीत पहनने और प्रतिदिन हवन करने वाले इस अनूठे वीर ने भीषण ज्वर में खटिया पर पड़े-पड़े ही सिक्खों से हिन्दुओं को पृथक् मानने वाली पुस्तक का खण्डन करते हुए पुस्तक लिखी थी- 'हमारे गुरु साहिबान वेद के पैरोकार थे।'

एक बार ये किसी मेले में गए। वहाँ गोदना गोदने वाले के पास बैठ गए। इनकी बारी आने पर गोदना गोदने वाले ने इनका हाथ चित्र बनाने के लिए पकड़ा, तो मतवाला भक्त हाथ छुड़ाकर कहता है- "मेरी छाती पर महर्षि दयानन्द की वह आकृति, जो उनकी ध्यान अवस्था और अवधूत स्थिति की है, गूंद दो। गुदवाना वहाँ चाहिए, जो शरीर का सबसे पवित्र स्थान हो और जहाँ गूंदी हुई आकृति सदा विद्यमान रहे।"

रामायण के इसी उपरोक्त प्रसंग को सुनाया था गुरुकुल काँगड़ी में दीपावली के पर्व पर महात्मा मुंशीराम ने। पं० सोमदत्त विद्यालंकार ने लिखा है कि महात्मा मुंशीराम ने गुरुकुल के लिए अंग्रेजी सरकार की एक लाख रुपये वार्षिक की सहायता लेने से मना कर दिया, तो गुरुकुल के कुछ विद्यार्थी रोजगार के प्रति चिन्तित हो महात्मा जी के समक्ष उपस्थित हुए। उनकी बातें सुनकर महात्मा जी की आँखों में आँसू आ गए। तीन-चार दिन बाद दीपावली के अवसर पर उसी प्रसंग को लेकर महात्मा जी ने रामायण की लोक प्रचलित कथा सुनाई, जिसमें माता सीता ने अपने गले का हार कृतज्ञतावश हनुमान को भेंट किया था और हनुमान जी उसके मनकों को तोड़ने लगे। माता सीता ने कारण पूछा, तो हनुमान बोले- 'माँ, मैं देख रहा हूँ कि इन मनकों में राम का नाम अंकित है या नहीं। यदि इनमें राम का पवित्र नाम नहीं, तो यह कण्ठहार मेरे लिए किस काम का?'

फिर विद्यार्थियों को ईश्वर के भरोसे आश्वस्त कर महात्मा जी बोले- "मैंने यह संस्था अंग्रेज सरकार के गुलाम डिप्टी कमिश्नर या कलैक्टर पैदा करने के लिए नहीं खोली है। इस संस्था का जन्म देने का मेरा उद्देश्य तो इसमें ऐसे स्नातकों को जन्म देना था, जो अपनी मातृभूमि को दासता के अभिशाप से मुक्त करने के लिए अपने जीवन की बाजी लगा दें। मैं तो चाहता हूँ कि इससे जो स्नातक निकलें, वे ऐसे हों कि हनुमान् की तरह उनके रोम-रोम में 'ओ३म्' का पवित्र नाम अंकित हो। जो अपना जीवन अपने प्रभु की सेवा में और उसकी पवित्र वाणी वेद का सर्वत्र प्रचार करने में लगाने के लिए दीवाने हों। जो अपना हृदय हनुमान की तरह खोलकर दिखा सकें कि वहाँ वर्तमान समय के सर्वश्रेष्ठ सुधारक भगवान् दयानन्द की पवित्र मूर्ति विद्यमान है।..."

अपने आचार्य की आज्ञा पालन करते हुए इस श्रद्धालु शिष्य मुंशीराम ने अपना सर्वस्व आहुत कर दिया। फिर भी विरोधी छिद्रान्वेषण में लगे रहे। आचार्य दीनानाथ सिद्धान्तालंकार ने लिखा है- "(गुरुकुल में) प्रथम प्रविष्ट होने वाले बच्चों में उनके दोनों सुपुत्र हरिश्चन्द्र और इन्द्र थे। गुरुकुल में छात्रावस्था में इन्द्र जी का एक फेफड़ा कमजोर हो गया था। इलाज के लिए उन्हें कई मास तक शिमला के पास सोलन में रखना पड़ा। गुरुकुल-विरोधियों ने यह अफवाह उड़ा दी कि मुंशीराम दूसरों के बच्चों को तो गुरुकुल में भेजने के लिए प्रचार करते हैं, पर अपने लड़के को वहाँ से निकाल अन्यत्र भेज रहे हैं।" इस कुप्रचार से स्वामी जी को बहुत दुःख हुआ। उसी वर्ष गुरुकुल के वार्षिक उत्सव पर अपनी जालन्धर की शानदार कोठी और सद्धर्म प्रचारक पत्र व प्रेस गुरुकुल को दान करने की घोषणा के साथ ... यह भी घोषणा की - 'इन्द्र गुरुकुल में ही पढ़ता है और यहीं पढ़ेगा। यदि वह मर भी गया, तो उसकी हड्डियाँ भी इस भूमि में ही गाड़ी जायेंगी।' महात्मा जी जब यह घोषणा कर रहे थे, तो उत्सव में उपस्थित अधिकांश नर-नारियों की आँखों से अश्रुधारा बह रही थी।"

(क्रमशः)

❑❑

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। **सविता = ईश्वरः देवता**। भुरिगजगती। निषादः स्वरः।।

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते।।

वह यज्ञ कैसा है, यह फिर उपदेश किया है।।

ओ३म् वसो॑ प॒वित्र॑मसि श॒तधा॑रं॒ वसोः॑ प॒वित्र॑मसि स॒हस्र॑धारम्।
दे॒वस्त्वा॑ सवि॒ता पु॑नातु॒ वसोः॑ प॒वित्रे॑ण श॒तधा॑रेण सु॒प्वा काम॑धुक्षः।।३।।

पदार्थ **(वसोः)** वसुर्यज्ञः **(पवित्रम्)** शुद्धिकारकं कर्म **(असि)** अस्ति। **अत्र सर्वत्र पुरुषव्यत्ययः (शतधारम्)** शतं = बहुविधमसंख्यातं विश्वं धरतीति तम्। **शतमिति बहुनामसु पठितम्। निघं० ३।१।।** **(वसोः)** वसुर्यज्ञः **(पवित्रम्)** शुद्धिनिमित्तम् **(असि)** अस्ति **(सहस्रधारम्)** बहुविधं ब्रह्माण्डं धरतीति तं यज्ञम्। **सहस्रमिति बहुनामसु पठितम्।। निघं० ।३।१।।** **(देवः)** स्वयंप्रकाशस्वरूपः परमेश्वरः **(त्वा)** तं यज्ञम् **(सविता)** सर्वेषां वसूनामग्निपृथिव्यादीनां त्रयस्त्रिंशतो देवानां प्रसविता। **सविता वै देवानां प्रसविता।। श० १।१।२।१७।।** **(पुनातु)** पवित्रीकरोतु **(वसोः)** पूर्वोक्तो यज्ञः **(पवित्रेण)** पवित्रनिमित्तेन वेद-विज्ञानकर्मणा **(शतधारेण)** बहुविद्याधारकेण परमेश्वरेण वेदेन वा **(सुप्वा)** सुष्ठुतया पुनाति पवित्रहेतुर्वा तेन **(काम्)** कां कां वाचं **(अधुक्षः)** दोग्धुमिच्छसीति प्रश्नः। **अत्र लडर्थे लुङ्।। अयं मंत्रः श० १।७।१।१४-१७ व्याख्यातः।।३।।**

प्रमाणार्थ **(शतम्)** 'शत' शब्द निघं० (३। १) में बहुनामों में पढ़ा गया है। **(सहस्रम्)** 'सहस्र' शब्द का निघं० (३ / १) में बहुनामों में पाठ किया गया है। **(सविता)** शत० (१ । १ । २ । १७) में 'सविता' का अर्थ 'देवों का उत्पन्न करने वाला' किया है। **(अधुक्षः)** यहाँ लट् अर्थ में लुङ् लकार है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । ७ ।१ । १४-१७) में की है। १ । ३ ।।

सपदार्थान्वयः **यो वसोः = वसुर्यज्ञः शतधारं पवित्रमसि =शतधा शुद्धिकारकोऽस्ति** (शत-धारम्=बहुविधमसंख्यातं विश्वं धरतीति तं पवित्रम्=शुद्धिकारकं कर्म), **सहस्रधारं पवित्रमसि=सुखदोऽस्ति** (सहस्रधारम्=बहुविधं ब्रह्माण्डं धरतीति तं यज्ञं, पवित्रम्=शुद्धिनिमित्तम्), **त्वा=तं, तं** यज्ञं **सविता** सर्वेषां वसूनामगिनपृथिव्यादीनां त्रयस्त्रिंशतो देवानां प्रसविता **देवः** स्वयंप्रकाशस्वरूप परमेश्वरः **पुनातु** पवित्रीकरोतु।

हे जगदीश्वर! भवान् तेनास्माभिरनुष्ठितेन पवित्रे पवित्रनिमित्तेन वेदविज्ञानकर्मणा **शतधारेण** बहुविद्याधारकेण परमेश्वरेण वेदेन वा **सुप्वा=यज्ञेन** सुष्ठुतया पुनाति पवित्रहेतुर्वा तेन **अस्मान् पुनातु** पवित्रीकरोतु।

हे विद्वन्, जिज्ञासो वा! त्वं कां कां कां (वाचं) **वाचमधुक्षः=प्रपूरयसि, वा प्रपूरयितुमिच्छसि** दोग्धुमिच्छसीति प्रश्नः।।१।३।।

भाषार्थ : जो **(वसोः)** यज्ञ **(शतधारम्)** शतधा **(पवित्रम्)** शुद्धिकारक **(असि)** है अर्थात् बहुविध असंख्य विश्वों को धारण करने वाला, शुद्धिकारक कर्म

शास्त्रार्थ

विषय : क्या ईश्वर का अवतार होता है?

प्रधान : श्री मास्टर बोधराज जी

दिनांक : 20, 21 दिसम्बर सन् 1919 (दिन के दो बजे)

शास्थार्थ कर्ता : शास्त्रार्थ महारथी श्री ठाकुर अमर सिंह जी 'आर्य पथिक' वर्तमान महात्मा अमर स्वामी जी महाराज एवं

सनातन धर्मियों की ओर से : श्री पं. गोकुल चन्द जी शास्त्री

जून २०१७ से आगे

> आर्यसमाज में जब शास्त्रार्थों का युग था, तब गैर आर्यसमाजी लोग आर्यसमाज में आते व बड़े चाव से हमारी बात सुनते थे। इसी बात को ध्यान में रखकर हमारे विद्वानों के शास्त्रार्थों में से एक शास्त्रार्थ का प्रसंग यहाँ उद्धृत किया जा रहा है।
>
> -सम्पादक

क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः।।२।।

(योगदर्शन पाद १ सूत्र २६)

अविद्या (विपरीत ज्ञान), अस्मिता (अहंकार), राग द्वेष और अभिनिवेष, (मृत्यु का भय) ये पांच क्लेश, जिनसे सुख और दुःख प्राप्त हों वह शुभाशुभ कर्म विपाक कर्म फल आशय (कर्मों की वासना) इनसे सर्वथा रहित पुरुष विशेष परमेश्वर है।

राम आदि सबको क्लेश हुए इनमें राग और द्वेष भी दिखाई देता है। ये कर्म फल भी भोगते थे, इस लिए ये सब ईश्वर नहीं थे। पण्डित जी महाराज!

सनातन धर्म के अनुसार तो यह भी सिद्ध होना कठिन है, कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव और दुर्गा इन चारों में से परमेश्वर कौन है?

पुराणों में कहीं ब्रह्मा जी को सबसे बड़ा बताया है, कहीं शिवजी को सबसे बड़ा बताया है, कहीं विष्णु जी ही सबसे बड़े कहे गये हैं। कहीं शक्ति को ही इन सब पर शासन करने वाली बतायी गयी है।

इतना ही नहीं कहीं ब्रह्मा जी की निन्दा लिखी है। कहीं शिव की और कहीं विष्णु की निन्दा की गयी है।

अतः बताने की कृपा करें कि आपका ईश्वर कौन है? तथा आप किसका अवतार सिद्ध करना चाहते हैं।

श्री पं. गोकल चन्द जी शास्त्री

लीजिये मैं एक दो वेद मन्त्र और बोलता हूं

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधेपदं समूढस्य पाथ्ससुरे ।।१५।।

यजुर्वेद अध्याय ५ मन्त्र १५,

इस मन्त्र में विष्णु के वामनावतार के तीन पदों का वर्णन है, राजा बली के राज्यादि और शरीर को भी वामनावतार में तीन पगों से नाप लिया था।

२ प्रतद्विष्णु स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षिपन्ति भुवनानि विश्वा।।२०।।

यजुर्वेद अध्याय ५ मन्त्र २०

इस मन्त्र में विष्णु के नृसिंहावतार का वर्णन हैं

३. भद्रो भद्रया सचमान् आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।।३।।

ऋग्वेद मन्डल १० सूक्त ३ मन्त्र ३,

इस मन्त्र में रामवतार और सीता तथा सीता के जार रावण का भी वर्णन है, और वराह व कृष्ण नाम भी वेद में आते हैं, पुराणों के आपने बहुत प्रमाण दिये हैं, दुर्भाग्य से हमने भीमद्भागवत पुराण ही पढ़ा है, और गरुड़ पुराण तो बार-बार ही पढ़ना पड़ता है, जब

शेष पृष्ठ ४ पर

कठोपनिषद् की कथा

(उत्तरा नेरुर्कर, बंगलौर, मो.- 09845058310)

पिछले मास मैंने केनोपनिषद् की कथा के गूढ़ अर्थ प्रदर्शित किए थे। उससे प्रसन्न होकर भाई दिनेश शास्त्री ने कहा कि मैं अन्य उपनिषदों की कथाओं पर भी प्रकाश डालूँ। उनके सुझाव को सिर-आँखों पर लेते हुए, मैं ऐसा ही कर रही हूँ। इस मास हम कठोपनिषद् की कथा देखते हैं। वैसे तो यह उपनिषद् और उसकी कथा सुप्रसिद्ध है, तथापि उसके कुछ तथ्य बहु-चर्चित नहीं हैं। इस लेख में मैं उनको भी उभार रही हूँ और उपनिषद् का सारांश भी दे रही हूँ।

कठोपनिषद् कृष्णयजुर्वेद की कठ शाखा के अन्तर्गत है। इसलिए पदे-पदे इसमें यजुर्वेद के मन्त्रों की जैसे व्याख्या मिलती है। तथापि अन्य तीन वेदों के मन्त्र भी इसमें पाए जाते हैं। उन सब को रुचिकर बनाती है यम और नचिकेता की कथा। संक्षेप में कथा कुछ इस प्रकार है-

एक बार, नचिकेता के पिता उद्दालक ने विश्वजित् यज्ञ किया जिसमें अपना सब-कुछ दान दे दिया जाता है। आखिर में पिता बूढ़ी गाएं भी देने लगे, जिनसे किसी का कुछ भी भला नहीं होने वाला था। नचिकेता को दुःख हुआ कि ऐसा करके उसके पिता पाप कर रहे हैं। बिना इस दोष को कहे, परन्तु उनको चिताने के लिए, उसने उनसे पूछा कि आप मुझे किसको दे रहे हैं (क्योंकि अन्ततः मैं भी आपकी सम्पत्ति हूँ)। पिता कुछ ना बोले, तो नचिकेता ने दोबारा पूछा। तीसरी बार जब उसने पुनः पूछा, तो पिता ने झल्ला कर कहा, "मैं तुझे मृत्यु को देता हूँ।"

वचन मुख से निकलते ही उन्हें पश्चाताप हुआ, परन्तु नचिकेता अपने पिता के वचन को झुठलाना नहीं चाहता था। उस काल में मुख से निकले वचन का इतना महत्व हुआ करता था। उसने अपने पिता को समझाया, "आप पिछले समय को याद करें और आगे के समय का अनुमान लगाएं तो पाएंगे कि फसल के समान, मनुष्य भी पकता है और पुनः उत्पन्न होता है। इसलिए मेरी मृत्यु पर शोक न करें।"

किसी तरह नचिकेता यम के प्रासाद पर पहुँच जाता है, परन्तु यम उस समय प्रवास कर रहे थे। कुमार नचिकेता ने तीन दिन भवन में न तो प्रवेश किया और न ही अन्न-पान ग्रहण किया। यम के लौटने पर उनकी पत्नी बोलीं, "जिसके घर पर ब्राह्मण बिना खाए-पिए रुकता है, उसके सभी सुख और धन-वैभव नष्ट हो जाते हैं, यहाँ तक कि उसके किए हुए पुण्य भी निरर्थक हो जाते हैं। ऐसा करने वाला मन्दबुद्धि ही होगा। इसलिए आप कृपा करके ये अर्घ्य, पाद्य, आदि ले जाइए और अतिथि के कोप को शान्त करिए।" इस प्रकार अतिथि-सत्कार की प्रथा की झलक हम यहाँ पाते हैं।

नचिकेता को प्रसन्न करने के लिए, यम ने प्रत्येक रात्रि जिसके लिए वह रुका, उसके लिए एक-एक वर दिए, अर्थात् तीन वर। नचिकेता ने, बुद्धिमानी का पुनः परिचय देते हुए, पहला वर माँगा, "जब मैं वापस पिता के पास जाऊँ, तो वे मुझे देखकर पहचान लें और प्रसन्नता से मेरा अभिवादन स्वीकार करें।" इस एक वर से नचिकेता ने बहुत कुछ माँग लिया! वह ऐसे-

१) मैं आपके घर से लौटकर पृथिवीलोक पुनः जाऊँ।

है, **(सहस्रधारम्)** बहुविध ब्रह्माण्ड को धारण करने वाला, **(पवित्रम्)** सुखदायक एवं शुद्धि का निमित्त **(असि)** है, **(त्वा)** उस यज्ञ को **(सविता)** सब वसु अर्थात् अग्नि, पृथिवी आदि तैंतीस देवों का उत्पादक **(देवः)** स्वयं प्रकाशस्वरूप परमेश्वर **(पुनातु)** पवित्र करे।

हे जगदीश्वर! आप हम लोगों से सेवित **(पवित्रेण)** पवित्रताकारक वेद-विज्ञान-कर्म से **(शतधारेण)** बहुत विद्याओं के धारक परमेश्वर वा वेद से **(सुप्वा)** अच्छी प्रकार पवित्र करने वाले वा पवित्रता के हेतु यज्ञ से हमें **(पुनातु)** पवित्र कीजिये।

हे विद्वान् अथवा जिज्ञासु मनुष्य! तू **(काम्)** कौन-कौन सी वाणी को **(अधुक्षः)** दुहना चाहता है? ।।१।३।।

भावार्थः ये मनुष्याः पूर्वोक्तं यज्ञमनुष्ठाय पवित्रा भवन्ति, तान् जगदीश्वरो बहुविधेन विज्ञानेन सह वर्त्तमानान् कृत्वैतेभ्यो बहुविधं सुखं ददाति। परन्तु-ये क्रियावन्तः परोपकारिणः सन्ति ते सुखमाप्नुवन्ति, नेतरेऽलसाः।

भावार्थः जो मनुष्य पूर्वोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करके पवित्र होते हैं, उनको परमेश्वर बहुत प्रकार के विज्ञान से युक्त करके उन्हें अनेक प्रकार का सुख प्रदान करता है। परन्तु- जो कर्मशील परोपकारी हैं, वही सुख को प्राप्त करते हैं; दूसरे आलसी लोग नहीं।

पृष्ठ २ का शेष

किसी की मृत्यु हो जाती है, तब उस घर में हम गरुड़ पुराण ही पढ़ते हैं।

ब्रह्मायेन कुलाल वन्नियमितो० आदि

यह श्लोक तो उसमें अभी आया ही नहीं।

अन्य पुराणों को हमने पढ़ा नहीं है, इस लिए उनके विषय में अभी कुछ कह नहीं सकते। नारद ने विष्णु को शाप क्यों दिया, इसको स्पष्ट करिये। ब्रह्मा आदि की प्रशंसा जहां-जहां है, "वह तो जिसका विवाह उसके गीत' पर पुराणों में निन्दा भी इनकी है, ऐसा हमारा विश्वास नही है, बता सकते हो तो बताइये ?

आर्यसमाजी पंडित जी की बहुत बातों का उत्तर हमारे पास नहीं है। उनका पांण्डित्य भी बहुत है, तथा उनकी सभ्यता और शिष्टाचार की हम सराहना करते हैं, इस शास्त्रार्थ से बहुत सी बातों नई सामने आई हैं, पण्डित जी के अन्तिम भाषण में और भी आयेंगी, उन सब पर हम विचार करेंगे, और हम आशा करते हैं, श्री पण्डित अमर सिंह जी महाराज से हमारा फिर से सम्पर्क और सम्वाद होगा।

श्री पण्डित अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केसरी

श्री पं. गोकुल चन्द जी शास्त्री विद्वान तथा हठ दुराग्रह से रहित हैं। मैं आशा और विश्वास करता हूं कि श्री पं. जी शीघ्र ही आर्यसमाजी हो जावेंगें, और यह मानने लगेंगे कि ईश्वर कभी जन्म नहीं लेता है। पण्डित जी ने जो वेदमन्त्र बोले हैं, उनके विषय में मैं स्पष्टकीरण करता हूं। सुनिये! षण्डित जी ध्यान से सुनें।

१. इदं विष्णुर्विचक्रमे. इस मन्त्र में न तो वामन अवतार का नाम है, और न राजा बली का केवल तीन पगों (पदों) का वर्णन होने से न वामनावतार न बली राजा को ठगना, अर्थात् उससे ठगी करना सिद्ध होता है। धोखा देना परमेश्वर का काम नहीं है, इस मन्त्र में विष्णु नाम से सूर्य का वर्णन किया जाता है, सूर्य के तीन पग, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौ में होते हैं, दूसरा अर्थ विष्णु का यज्ञ है। शतपथ ब्राह्मण में भी कहा गया है कि -

"यज्ञो वै विष्णुः"

यह भी पृथ्वी अन्तरिक्ष, और द्यौ तक जाता है, श्री मनु जी ने भी मनुस्मृति में कहा है -

"अग्नौ प्रास्ताहुति सम्यक् आदित्यमुप तिष्ठते"

अग्न में अच्छी प्रकार दी हुई आहुति सूर्य तक पहुंचती है। विष्णु परमेश्वर का भी नाम है। उसके तीन पग कई प्रकार से कहे जाते हैं, सूर्य, अग्नि और वायु, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौ, तथा भूत, भविष्यत् और वर्तमान आदि।

(क्रमशः)

वर्णन करता है, वह मोक्ष का है, और सुखी जीवन का नहीं, जो कि विश्वजित् यज्ञ से प्राप्त होता। सो, उस वर में सबसे गूढ़ विद्या माँगी गई है, जिसे कि यम तीसरे वर के अन्तर्गत देते हैं।

५) सबसे बड़ा अन्तर्विरोध यह है कि, जो नचिकेता शरीर त्याग करके स्वर्ग पहुँचा है, तो वह मृत्यु के बाद क्या होता है, यह तो स्वयं अनुभव कर रहा है। फिर उसको यम से तृतीय वर के रूप में पूछने की आवश्यकता ही क्या थी?

इस सब से ज्ञात होता है कि कथा सर्वथा काल्पनिक है, और उसमें अधिक विश्वसनीय तथ्य नहीं है। तथापि वह मन लुभाने वाली है और उसको कहते-कहते भी उपनिषत्कार अनेकों सीख दे जाते हैं। कहानी से रुचि बनती है, और उपदेश को प्रस्तुत करने का एक ढांचा मिल जाता है, जिससे कि उसको स्मरण रखने में भी सहायता मिलती है। प्रधानतया, आगे के जो यमराज के वचन हैं, वे ही वे उपदेश हैं जिनके लिए उपनिषद् लिखा गया है।

उन उपदेशों का निरूपण भी बहुत मन-लुभावने ढंग से किया गया है, जिसमें प्रसंगवश अनेकों सीखें पिरो दी गई हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं-

१) जीवन में हर समय हमारे सामने दो विकल्प रहते हैं- एक जो प्रिय लगता है और एक जो श्रेयस्कर होता है। जो श्रेय होता है, वह अनेक बार अप्रिय लगता है, क्योंकि प्रिय और अप्रिय, ये इन्द्रिय-जनित अनुभव होते हैं, जबकि श्रेय बुद्धि और आत्मा के मनन से विवेक उत्पन्न होता है। प्रिय अविद्या होती है, और श्रेय विद्या होता है। ये दोनों आत्मा को विपरीत दिशाओं में ले जाते हैं। जहाँ अविद्या इस संसार में बांधे रखती है, वहाँ विद्या मोक्ष प्राप्त कराती है। यह यजुर्वेद का प्रसिद्ध सन्देश ही है-

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते (४०/१४)।

२) यमराज यह भी बताते हैं कि श्रेयबुद्धि सरलता से नहीं उत्पन्न होती है, क्योंकि यह तर्कादि के परे है। इसमें जन्म-जन्मान्तर के शुभकर्म और उनसे उत्पन्न आत्मा की पवित्रता ही कारण हैं। यह तो हम प्रतिदिन ही अनुभव करते हैं- कम ही जन हैं जो कि मोक्ष के विषय में सोचते भी हों। मन्दिरों में चढ़ावे भौतिक सम्पदा के लिए चढ़ाते हैं, आत्मिक उन्नति के लिए नहीं।

३) इसका एक कारण यह भी है कि परमात्मा ने हमारी इन्द्रियों को बलात् बहिर्मुख कर दिया है और कोई ही ऐसा धीर होता है, जो इन्द्रियों के द्वार बन्द करके अन्दर झाँकता है।

४) इसीलिए मोक्ष के मार्ग का प्रवचन करने वाले विरले होते हैं और उसको समझने वाले भी। यमराज जो संक्षेप में इस मार्ग का स्वरूप बताते हैं, सो वह एक पद में ही समा जाता है- ओ३म्। यही उसका आदि है, यही अन्त और यही मध्य है। इसी को लक्ष्य करके पथिक को राह पकड़नी होती है, जिससे कि अक्षर ब्रह्म और अनन्त सुख की प्राप्ति होती है। उस पदवाच्य परमात्मा की सुन्दर स्तुति पूरे उपनिषद् में भरी हुई है।

५) दूसरी ओर जो भौतिक कामनाओं में फंसे रहते हैं, वे मृत्यु के चंगुल से छूट नहीं पाते।

६) गीता में लगभग उसी प्रकार पाए गए प्रसिद्ध श्लोकों-

न जायते म्रियते वा विपश्चिन (कठ १/२/१८, गीता २/२०) और **हन्ता चेनमन्यते हन्तुम्** (कठ० १/२/१९, गीता २/१९)- के द्वारा यम बताते हैं कि जीवात्मा भी अनादि व अनन्त है (इन्हीं समानताओं के कारण, कई लोगों की मान्यता है कि भगवद्गीता

शेष पृष्ठ २७ पर

२) क्योंकि मैं मर गया था, इसलिए मुझे लोग भूत-प्रेत समझ कर डरकर मेरे साथ अन्यथा व्यवहार कर सकते हैं। ऐसा न हो और वे मुझे पहचानकर प्रसन्न हों कि मैं मृत्यु के मुख से लौट आया हूँ।

३) विशेषकर, जो मेरे पिता मुझसे रुष्ट थे, उनका कोप शान्त हो जाए और वे पुनः मुझे प्रेम से ग्रहण करें। यम ने तत्परता से यह वर उसे प्रदान किया।

दूसरे वर में, नचिकेता कहता है, "हमने सुना है कि स्वर्गलोक जैसा एक स्थान है, जहाँ पर कोई भय नहीं है, न आप का राज है (अर्थात् मृत्यु नहीं है) और न बुढ़ापा है। हे मृत्यो! आप उस स्वर्गलोक के विषय में मुझ श्रृद्धालु को बताइए।" यम सहर्ष उसको इस विद्या का दान करते हैं, जिसमें यह यज्ञाग्नि का चयन कहा गया है, जबकि उसको बुद्धि की गुफा में निहित भी कहा गया है। नचिकेता ने सब ग्रहण करके, यमराज को जैसा का तैसा पाठ सुना दिया। उसके ध्यान और मेधा-शक्ति से यमराज इतने प्रसन्न हो गए कि उन्होंने उसको एक और वर बिना माँगे ही दे दिया- कि वह यज्ञ नचिकेता के नाम पर नाचिकेताग्नि कहाएगा। इसके साथ ही उसको अनेक रूपों वाली एक माला भी दी।

अब समय आया तीसरे वर का तो नचिकेता ने कहा, "लोक में यह संशय है कि मरने के बाद आत्मा जैसी कोई वस्तु शेष रहती है या सब स्वाहा हो जाता है। इस विषय को आप मुझे सिखाइए।" इस प्रश्न पर यमराज बहुत विचलित हो जाते हैं और नचिकेता से कोई और वर माँगने का अनुरोध करते हैं, क्योंकि यह विषय विद्वानों के द्वारा भी ज्ञात नहीं होता। वे उसे अपूर्व धन, भूमि, आयु, आदि, सभी भौतिक प्रलोभनों से लुभाने का प्रयत्न करते हैं। नचिकेता भी चतुर तो है ही! वह कहता है, "जब आप ही कह रहे हैं कि यह विषय कठिन है, तो आप जैसा जानने वाला और आप जैसा सिखाने वाला मुझे कहाँ मिलेगा? आप जो मुझे भौतिक वस्तुओं का प्रलोभन दे रहे हैं, उनको भोगने के लिए तो एक जीवन भी कम है। कब किसी की इच्छाएं पूरी हुई हैं? ये तो केवल इन्द्रियों के तेज को हर लेती हैं और आयु को कम कर देती हैं। अब जब आपको देख लिया है, तो धन और आयु तो मुझे प्राप्त हो ही जाएंगे। इसलिए मुझे वर तो यही माँगना है।" हार के यम अब अपना प्रवचन प्रारम्भ करते हैं, और वही इस उपनिषद् की विषय-वस्तु है।

इस कथा का जो हम विश्लेषण करें, तो हमें इसमें कई अन्तर्विरोध मिलते हैं। सम्भवतः अन्यों ने भी इनको देखा हो, परन्तु मैंने कभी इनके विषय में कोई चर्चा नहीं देखी/सुनी। इसलिए मैं इनकी ओर ध्यान आकर्षित करना चाहती हूँ। ये इस प्रकार हैं-

१) नचिकेता क्या भूत-आत्मा के रूप में यमलोक पहुँचा, या सशरीर? क्योंकि यम की पत्नी ने उसको ब्राह्मण पुकारा, इससे प्रतीत होता है कि वह सशरीर ही वहाँ पहुँचा। यह तो वैदिक मान्यता के विरुद्ध है। वैसे, यम की सत्ता ही वैदिक मान्यता के विरुद्ध है।

२) यम की पत्नी कहती है कि हमारे सारे पुण्य भी नष्ट हो जायेंगे, यदि हमने ब्राह्मण को शान्त नहीं किया। जो स्वयं पाप-पुण्य के फल देता हो, वही पाप-पुण्य से बन्ध जाये, तो न्याय कैसे करेगा? तथापि सम्भवतः उपनिषत्कार इससे सीख दे रहे हों कि मनुष्यों को अतिथि के सत्कार में ढ़ील नहीं छोड़नी चाहिए...

३) दूसरे वर के विषय में तो नचिकेता स्वयं जानता था- पिता को बूढ़ी गाएं देते हुए, वह समझ गया था कि इन गायों को देकर कोई स्वर्ग नहीं जा सकता, अर्थात् क्या करने से कोई स्वर्ग जाता है या नहीं जाता, वह उसको ज्ञात था।

४) वास्तव में, द्वितीय वर में जो वह स्वर्ग का

चरम पर है। यदि अलगाववाद और आतंकवाद में भी महबूबा और मोदी सरकार को साम्प्रदायिक सद्भाव के समाप्त होने का भय है, तो यह उनका भय नहीं, अपितु भयमिश्रित भ्रम है। कश्मीर की क्षेत्रीय पार्टी का एक प्रवक्ता इनामुल हक वहाँ के मामलों के जानकार गौहर गिलानी नाम के पत्रकार को जम्मू कश्मीर में फैला अलगाववाद और आतंकवाद, स्वतन्त्रता आन्दोलन व आजादी का संघर्ष नजर आता है। सुरक्षाबलों पर हमला और पत्थरबाजी में कोई अपराध नजर नहीं आता है। बुरहान वानी और सब्जार भट्ट जैसे आतंकवादी उनको बलिदानी नजर आते हैं। मस्जिद जिसे इस्लाम के अनुसार खुदा की इबादतगाह माना जाता है, वहाँ से जिस प्रकार की राष्ट्रविरोधी गतिविधियों का संचालन किया जाता है, वो किसी से छिपा नहीं है। कश्मीर में आतंकवाद और अलगाववाद की वर्तमान कथा के सूत्रधार मीरवाईज उमर फारुख, शब्बीर शाह, यासीन मलिक और अहमद शाह गिलानी हैं कि जिनके इशारे पर वहाँ देशद्रोह, विश्वासघात और गद्दारी का गन्दा खेल खेला जा रहा है। जिसके कारण प्रतिदिन अनमोल जिन्दगियाँ मोल चुका रही हैं। हम फिर भी चिल्ला-२ कर कह रहे हैं - ''जहाँ बलिदान मुखर्जी हैं, वो कश्मीर हमारा है।'' परन्तु मुझे इसके विपरीत हरिओम पंवार की वो पंक्तियाँ याद आ रही हैं, जिन्हें प्रबुद्ध पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि -

''बस नारों में गाते रहिएगा, कश्मीर हमारा है।
छूकर देखो तो, हिम चोटी के नीचे अंगारा है।।
कश्मीर वो डूब गया है, गहरी अन्धी खाई में।
फूलों की खुशबू रोती है, मरघट की तन्हाई में।।''

राजधर्म जम्मू कश्मीर में जिस प्रकार तार-तार हो रहा है, लोकतान्त्रिक मर्यादाओं की जिस प्रकार धज्जियाँ उड़ायी जा रही हैं, भारतीय संविधान का जिस प्रकार मजाक उड़ाया जा रहा है, मानवीय संवेदनाएं जिस तरह दम तोड़ती नजर आ रही हैं, राष्ट्र के धन पर पलकर अलगाववादी जिस प्रकार देशद्रोह को और पत्थरबाजी को हवा दे रहे हैं तथा इस देश की शासन व्यवस्था को देशद्रोहियों द्वारा जिस प्रकार ठेंगा दिखाया जा रहा है इन सबको जानने के बाद मुझे यह कहने व लिखने में लेशमात्र भी संकोच नहीं कि ''छद्म धर्मनिरपेक्षता का नकाब ओढ़े इस देश की राजनीति और तथाकथित धर्मनिरपेक्षतावादी कुछ राजनीतिज्ञ वहाँ (जम्मू कश्मीर) के अल्पसंख्यकों की और केन्द्र सरकार की लाचारी पर हंस रहे हैं।'' राजधर्म में राजद्रोह से बड़ा और कोई अपराध नहीं हो सकता। और वो अपराध वहाँ खुल्लम-खुल्ला हो रहा है। अब प्रश्न यह है कि राजद्रोह के अपराध में शामिल उन शातिर अपराधियों के खिलाफ प्रभावी कार्यवाही करने का सरकार राजनीतिक साहस व इच्छाशक्ति कब दिखाएगी? यदि वक्त रहते इन जम्मू कश्मीर और देश के गद्दारों को उचित दण्ड नहीं दिया गया, तो इनकी गद्दारी और देशद्रोही व्यवहार एक दिन अनियन्त्रित हो जायेगा। महाभारत में महर्षि व्यास कहते है -

''दण्डश्चेन्न भवेल्लोके विनश्येयुरिमाः प्रजाः।
जले मत्स्यानिवाभक्ष्यन् दुर्बलान् बलवत्तराः।''

अर्थात् यदि राष्ट्र में निष्पक्ष न्यायोचित दण्डव्यवस्था नहीं होगी, तो राष्ट्र में अराजकता इस प्रकार होगी कि जिस प्रकार बड़ी मछली छोटी को खा जाती है, उसी प्रकार बलवान अपने से निर्बल को खा जायेगा। जम्मू कश्मीर में यही सब हो रहा है। महर्षि दयानन्द ने मनुस्मृति का हवाला देते हुए सत्यार्थ प्रकाश के छटे समुल्लास में राजधर्म विषय पर लिखते हैं -

''दण्डः शास्ति प्रजाः सवादण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः।।''

अर्थात् दण्ड से प्रजा पर शासन किया जाता है, दण्ड ही प्रजा की रक्षा करता है। रक्षा करते हुए राजा सदा जागरूक रहता है। इसीलिए बुद्धिमान सफल राजव्यवस्था के संचालन में दण्ड को राजा का धर्म मानते हैं। यदि राजधर्म का निष्पक्ष और न्यायपूर्ण तरीके से निर्वहन करना है, तो उसे बहुसंख्यक, अल्पसंख्यक, धर्मनिरपेक्षता और तथाकथित साम्प्रदायिक सद्भाव या सौहार्द जैसे शब्दों की दलदल से बाहर निकलना ही होगा, उपरोक्त शब्दों के चक्रव्यूह से बाहर निकले बिना देश की समस्यांओं खासकर जम्मू कश्मीर की समस्या का स्थायी समाधान निकलना न केवल कठिन है, अपितु असम्भव जैसा है। जम्मू-कश्मीर को यदि अलगाववाद और अलगाववादियों तथा आतंकवाद और आतंकवादियों के शिकंजे से छुड़ाना है, तो जम्मू कश्मीर और केन्द्र सरकार को प्रभावी और निर्णायक कदम उठाने होंगे। जम्मू कश्मीर में कट्टरवादी साम्प्रदायिकता और अलगाववाद और आतंकवाद के मध्य चोली दामन का सम्बन्ध है। यही सम्बन्ध आज देश की एकता अखण्डता व सम्प्रभुता के लिए बहुत बड़ा खतरा बना हुआ है। कट्टरवादी इस्लामी साम्प्रदायिकता जम्मू कश्मीर में पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवाद और अलगाववाद की ढाल बनी हुई है। राष्ट्र की एकता, अखण्डता के लिए सिरदर्द बनी साम्प्रदायिकता आतंकवाद की पर्याय नहीं तो और क्या है? आतंकवाद को पोषित करने वाली साम्प्रदायिकता यदि देशद्रोह नहीं तो और क्या है? क्या किसी के पास इसका उत्तर है? यदि है, तो दें।

आतंकवाद और साम्प्रदायिकता

(धर्मपाल आर्य)

यद्यपि आतंकवाद और साम्प्रदायिकता में अर्थगत कोई न तो सम्बन्ध है तथा न ही कोई समानता है। आतंकवाद का अपना अर्थ है, साम्प्रदायिकता का अपना अर्थ है। दो शब्द प्रायः सुने जाते हैं - साम्प्रदायिक सौहार्द व साम्प्रदायिक सद्भाव। देश की राजनीति में तो ऐसा लगता है जैसे कि इन दोनों शब्दों को नकाब के रूप में अपना लिया है तथा राजनीतिज्ञों ने अपनी राजनीति को चमकाने के लिए उपरोक्त शब्दों को मानो गोद ले लिया हो। साम्प्रदायिक सद्भाव तथा साम्प्रदायिक सौहार्द दोनों ही शब्द राजनीति और राजनीतिज्ञों के लिए अपरिहार्य हो गए हैं कि इन दोनों शब्दों के बिना राजनीति और राजनेताओं को अपना भविष्य अन्धकारमय नजर आता है। यही कारण है कि पिछले कुछ दशकों से राजनीतिक गलियारों में और राजनेताओं की जुबान पर उपरोक्त दोनों शब्द मन्त्रों की भांति रटे जा रहे हैं।साम्प्रदायिक सद्भाव व साम्प्रदायिक सौहार्द जिस प्रकार सुना जाता है, वैसे आतंकवाद सद्भाव या आतंकवाद सौहार्द जैसे शब्द नहीं सुनाई देते। साम्प्रदायिक सद्‌भाव उत्तर प्रदेश में साम्प्रदायिक सद्भाव बिहार में, साम्प्रदायिक सद्‌भाव मध्यप्रदेश राजस्थान में, साम्प्रदायिक सद्भाव मिजोरम मेघालय में, साम्प्रदायिक सद्भाव तेलांगाना तमिलनाडु में, साम्प्रदायिक सद्भाव केरल कर्नाटक में और साम्प्रदायिक सद्भाव असम और अरुणाचल में सफल हैं लेकिन जम्मू कश्मीर में साम्प्रदायिक सद्भाव क्यों बुरी तरह फेल है? इसका उत्तर किसी के पास नहीं है। पूरे देश में तथाकथित साम्प्रदायिक सद्भाव का बड़े जोर-शोर के साथ ढोल पीटा जाता है लेकिन जम्मू कशमीर और श्रीनगर में इस ढोल की पोल खुल जाती है ऐसा क्यों? इसका उत्तर किसी के पास नहीं है। जम्मू कश्मीर के साथ-साथ पश्चिमी बंगाल में भी ये तथाकथित साम्प्रदायिक सद्‌भाव क्यों नंगा हो जाता है? इसका उत्तर किसी के पास नहीं है। उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर जब मैंने तलाशने का प्रयास किया, तो बड़ी हैरानी वाला उत्तर मुझे प्राप्त हुआ। वो यह कि देश के जो प्रदेश हिन्दू बहुल वाले और मुस्लिम जनसंख्या न्यून वाले हैं, वहाँ तथाकथित साम्प्रदायिक सद्भाव के ढोल को बड़ी चालाकी से पीटा जाता है, जिसके कारण अल्पसंख्यक का दर्जा प्राप्त लोगों के लिए तथाकथित साम्प्रदायिक सौहार्द का राग उनकी ढाल बन जाता है। लेकिन जहाँ हिन्दू अल्पसंख्यक और मुसलमान बहुसंख्यक हैं, वहाँ धर्मनिरपेक्षता और साम्प्रदायिक सौहार्द का राग बुरी तरह असफल सिद्ध होता है। ऐसी धर्मनिरपेक्षता और उपरोक्त साम्प्रदायिक सौहार्द या सद्भाव राष्ट्र में, समाज में अराजकता और अव्यवस्था को जन्म देने वाले होंगे। धर्मनिरपेक्षता, साम्प्रदायिक सद्भाव और सौहार्द की छद्म व्याख्या देश की एकता, अखण्डता तथा सम्प्रभुता के लिए खतरा पैदा कर रही है। यदि ऐसा न होता, तो पार्थ चटर्जी, सन्दीप दीक्षित, सीताराम येचुरी तथा के.सी. त्यागी तथाकथित धर्म-निरपेक्षता की आड़ में गैरजिम्मेदार बयान नहीं देते। यदि उपरोक्त नेताओं के अधिकार में होता, तो ये आतंकवाद सद्‌भाव अथवा आतंकवाद सौहार्द जैसे शब्दों को भी इस देश पर और देश की राजनीति पर थोप देते। पार्थ चटर्जी नाम के किसी समाज शास्त्री ने जम्मू कश्मीर में सेना द्वारा आतंकवादियों के विरुद्ध चलाए जा रहे अभियान की तुलना जलियांवाला बाग में डायर द्वारा किए गए नरसंहार से कर दी। जो डायर द्वारा निहत्थे लोगों पर किए गये हमले को और जम्मू कश्मीर में आतंकवादियों और देशद्रोहियों के विरुद्ध चलाए जा रहे सैन्य अभियान को एक करके देखता है। जिसे जम्मू कश्मीर में भेजे पाकिस्तानी आतंकियों और जलियांवाला बाग के निहत्थे और अहिंसक आन्दोलनकारियों के बीच अन्तर समझ में नहीं आता और जो आतंकवादियों, देशद्रोहियों तथा आन्दोलनकारियों को एक ही नजरिए से देखता है। ऐसे समाजशास्त्री के समाजशास्त्रीय ज्ञान पर मुझे सचमुच तरस आता है। इसके बाद कांग्रेस के एक नेता (सन्दीप दीक्षित) ने भारत के सेनाध्यक्ष को सड़क का गुण्डा कहकर एक नई बहस को जन्म दे दिया। ये धर्मनिरपेक्षता के रखवाले हैं अथवा वोटों के सौदागर कहना मुश्किल है। भारतीय संस्कृति तो **"वसुधैव कुटुम्बकम्"** की संस्कृति है, जहाँ. पूरी वसुधा (पृथिवी) को एक परिवार के रूप में देखा गया है। जम्मू कश्मीर में इस्लामी साम्प्रदायिकता पाक प्रायोजित आतंकवाद को संरक्षण दे रही है। हमारी केन्द्र सरकार तथा वहाँ (जम्मू कश्मीर) की सरकार वहाँ आतंकवाद और अलगाववाद पर प्रभावी अंकुश लगाने से हिचकिचा रहे हैं। कारण वही कि कहीं साम्प्रदायिक सौहार्द न बिगड़ जाए। अरे बिगड़ेगा कहाँ से? क्योंकि हिन्दू पण्डितों को तो वहाँ से खदेड़ दिया गया है। साम्प्रदायिक सौहार्द और सद्भाव तो वहाँ कब का खत्म हो गया है। अब तो वहाँ आतंकवाद और अलगाववाद अपने

भी उसे नहीं छोड़ा। सर्वाधिक कठिन घड़ी में परीक्षा ली गई,. पर वह सफल रहे। (पृ० १८२-१८३)

महात्मा मुन्शीराम व पं० लेखराम अपने लेखों व भाषणों द्वारा मांसाहार को वेदविरुद्ध व घोर पाप सिद्ध कर विरोधियों के मुंह बन्द करते रहे। जोधपुर के महाराजा प्रतापसिंह यद्यपि महर्षि दयानन्द के भक्त थे, परन्तु वे राजपूतों के लिए मांसाहार को उचित मानते थे। इसके लिए उन्होंने महर्षि दयानन्द के लेखक रहे पं० भीमसेन शर्मा को धन देकर व्यवस्था लेनी चाही। भीमसेन फिसल गये और दबी जबान से क्षत्रियों के मांसभक्षण का विधान कर दिया।

५ अगस्त १८६३ को पं० लेखराम जोधपुर पहुँचे और भीमसेन को जा दबाया- "ईश्वर जानता है, यदि तूने महाराज के पास जाकर स्पष्ट न कहा कि वेद में मांस भक्षण का सर्वथा निषेध है तो तुझे किसी धार्मिक संस्था में पैर रखने के काबिल नहीं छोडूंगा।" दूसरे दिन पं० भीमसेन महाराजा से विदा लेने गये और बिना पूछे ही स्पष्ट रूप से मांस का निषेध कर दिया।

स्वामी श्रद्धानन्द ने 'आर्य पथिक पण्डित लेखराम' में लिखा है- ''एक बार (पं० लेखराम) किसी काम के लिए पेशावर आए, तो साप्ताहिक अधिवेशन में जो एक तहसीलदार की धर्मशाला में हो रहा था, सम्मिलित हुए। साप्ताहिक अधिवेशन की समाप्ति पर अन्तरंग सभा के सभासद बैठे रहे और विचार यह होने लगा कि जिन तहसीलदार महाशय की धर्मशाला अधिवेशनों के लिए मिली है, उनको ही समाज का प्रधान बनाया जाए।'' तहसीलदार साहब भी विराजमान थे। पण्डित लेखराम ने बिना संकोच के कहा- "यह मांस खाते और शराब पीते हैं। ऐसा आदमी प्रधान नहीं होना चाहिए।"

यदि उस युग में पण्डित गुरुदत्त तथा पण्डित लेखराम जैसे सिद्धान्तवादी लोग न होते, तो आर्यसमाज का स्वरूप बिगड़ जाता। पं० लेखराम की ऋषि दयानन्द के प्रति श्रद्धा थी, उनके सिद्धान्तों के प्रति श्रद्धा थी। तभी तो आर्य पथिक ने २५ की जगह ३६ वर्ष की अवस्था में विवाह किया और कई बार तो धर्मपत्नी लक्ष्मी देवी भी प्रचार यात्रा में साथ रहती थी। एक भी हिन्दू का विधर्मी होना इन्हें स्वीकार नहीं था। वे लेखन, भाषण, शास्त्रार्थ आदि का प्रयोग कर विरोधियों के मन में भय पैदा कर देते थे सत्यप्रियता और निडरता में वे अपने आचार्य दयानन्द का ही अनुकरण करते थे। चाहे स्वधर्मी बन्धु को विधर्मी होने से बचाने के लिए चलती रेल से कूदकर लहूलुहान होना हो या मस्जिद के पास उग्र हुई मुस्लिमों की भीड़ के सामने निडर होकर वैदिक प्रचार करना हो या कादियां में जाकर चमत्कारी होने का दावा करने वाले कादियानी मिर्ज़ा गुलाम अहमद की नाक में दम कर वहाँ आर्यसमाज की स्थापना करनी हो, यह सब उन्हें सहज लगता था।

जुलाई १८६६ में शिमला में पण्डित जी ने अपने अन्तिम व्याख्यान में इस विषय पर प्रमाण दिये कि इस्लाम के पैगम्बरों ने खुदाई का दावा करके कुफ्र फैलाया है। मुस्लिम मण्डली में से एक युवक से न रहा गया। उसने चीखकर कहा- 'काफिरों को काटने वाली महम्मदी शमशीर को मत भूल।' लेखराम एक क्षण रुक गये और जिधर से आवाज आई थी, उधर मुँह करके गरजते हुए बोले- "मुझे बुजदिल महम्मदी तलवार की धमकी देता है। मैंने अधर्मी निर्बल मनुष्यों से डरना नहीं सीखा। जानते नहीं हो मैं जान हथेली पर लिये फिरता हूँ।" सारी सभा में सन्नाटा छा गया और फिर किसी ने चूँ तक नहीं की।

वर्ष भर के अन्दर ही पिता, भाई व पुत्र (सुखदेव) की मृत्यु जैसे आघात पाकर भी धर्मवीर लेखराम ऋषि-वाटिका को सींचता रहा। कुछ कमी लगी, तो अपना रक्त भी चढ़ा दिया। शुद्धियज्ञ के होता ने महर्षि जीवन चरित् केवल लेखनी से ही नहीं, अपने रक्त से भी लिखा था। अंतिम समय में भी प्यारे ऋषि के मिशन की ही चिन्ता थी- "आर्यसमाज से लेख का काम बन्द नहीं होना चाहिए।"

हिन्दू समाज में प्रचलित है कि हनुमान ने अपना सीना चीर कर माता सीता को दिखाया था कि उनके हृदय में राम बसे हुए हैं। वास्तव में यह हनुमान की

ओहो! वह समर्पण भाव

(राजेशार्य आट्टा, 09991291318)

प्रिय पाठकवृन्द! दयानन्द नाम का सोम पीकर मतवाले वीर मस्ती में झूमते हुए धर्म की वेदी पर सर्वस्व स्वाहा कर गये। उन्हें न सुखों की परवाह थी, न दुःखों से घृणा। न जीवन से मोह था, न मृत्यु से भय। सिर हथेली पर रख कर चलने वाले मतवाले छुरा पेट में लगने पर भी उसी सोम की चाहना करते रहे। उन्हें तो सर्वत्र दयानन्द ही दयानन्द नजर आता था। वे संसार की आलोचना पर ध्यान कब धरते थे। संसार उन्हें पागल कहता, तो वे भी कह देते-

इन पागल दिमागों में, घनी खुशबू के लच्छे हैं।
हमें पागल ही रहने दो, हम पागल ही अच्छे हैं।।

ऋषिवर दयानन्द का महाप्रयाण देखकर पं० गुरुदत्त विद्यार्थी पूर्ण आस्तिकता के भाव लेकर ऋषि सिद्धान्त के प्रति समर्पित हो गये। इसी समर्पण भाव में एक दिन दो कपड़ों पर आर्य समाज के पाँच-पाँच नियम लिखवाए और उन्हें अपने आगे-पीछे बाँधकर ऋषि सन्देश सुनाने चल पड़े। देवी ने उन्हें इस रूप में देखा तो विस्मित होकर बोली- "पतिदेव! यह क्या हाल बनाया है? क्या कहेंगे लोग?" मुस्कराकर श्रद्धापूरित हृदय से मतवाले वीर ने उत्तर दिया- "भोली! तू नहीं जानती। अब यह जीवन मेरा नहीं रहा। मैं इसे ऋषि के चरणों में अर्पित कर आया हूँ। अब रोम-रोम उनकी धरोहर है देवी। कोई क्या कहेगा- इसकी चिन्ता कैसी?"

पं० चमूपति जी के शब्दों में इसे यूँ कह सकते हैं-

कहती है, कहे बुरा दुनिया, इस कुलटा को पतियाना क्या,
जब प्रेम गली में पाँव धरा, तब अपयश से घबराना क्या?
मत चेत, हृदय हो मस्ताना, चेता तो फिर मस्ताना क्या,
रह अपनी धुन में मस्त, न सुन है कहता तुझे जमाना क्या?

फिर तो ऋषि मिशन का यह दीवाना दिन-रात एक कर संसार को दयानन्द नाम का सोम पिलाने में जुट गया। अच्युतानन्द नाम के वेदान्ती साधु की विद्वता को देखकर पं० गुरुदत्त को लगा कि यह सुगन्धित पुष्प तो मेरे देवता (दयानन्द) की आराधना में अर्पित होना चाहिए। बस फिर तो दिन का चैन और रात की नींद भूलकर हठीले विद्वान् को आकर्षित करने में जुट गया। पुत्र की बीमारी भी उसे लक्ष्य से न डिगा पाई। आखिर गृहस्थी के त्याग के आगे संन्यासी का त्याग झुक गया और अपनी शिष्य-मण्डली को त्याग कर स्वामी अच्युतानन्द तीन और संन्यासियों के साथ स्वामी दयानन्द के प्रति समर्पित हो गये। अब उनके मुख से नवीन वेदान्त का खण्डन सुनाई देने लगा। एक बार सभा में बैठे पौराणिकों में से किसी ने इनके द्वारा पूर्व रचित उपनिषद् भाष्य दिखाकर कहा "इसमे क्या लिख रखा है और अब क्या अनर्थ करने लगे हो?" स्वामी अच्युतानन्द जी ने झट उत्तर दिया- "यह भी तो मेरा ही ग्रन्थ है। अब आँख खुलने पर मैंने ही उसका संशोधन कर लिया है।"

और सबसे बड़ी परीक्षा तो मतवाले गुरुदत्त ने मृत्युशय्या पर दी, जब डॉक्टरों के बार-बार कहने पर भी उन्होंने अपना सिद्धान्त नहीं छोड़ा। आदरणीय डॉ० रामप्रकाश जी ने 'पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी' पुस्तक में लिखा है- "जीवन रक्षा हेतु जब चिकित्सकों ने मांसाहार का परामर्श दिया, तो धर्मवीर ने उसे ठुकरा दिया। बोले- "क्या मांस खाकर अमर हो जाऊंगा? फिर तो कभी मौत नहीं आएगी? यदि मृत्यु निश्चित है, तो फिर एक निरपराध प्राणी के प्राण लेने का क्या लाभ?" आयुभर जिस सिद्धान्त का प्रचार किया, अन्तिम समय

गणतन्त्र में गनतंत्र कब तक

(राजीव चौधरी, मो. 09643886058)

छत्तीसगढ़ के सुकमा में पिछले दिनों सीआरपीएफ पर हुआ हमला पिछले सात सालों में सबसे बड़ा और घातक हमला बताया जा रहा है। घात लगाकर किया गया ये आक्रमण तीन घंटों तक जारी रहा। पिछले महीने इसी इलाके में एक और हमले में ११ अर्धसैनिक मारे गए थे। इस साल मार्च के अंत तक ८० अर्धसैनिक मारे जा चुके हैं। देश में हर वर्ष आतंकवाद नक्सलवाद से लड़ने के मसौदे तैयार किये जाते हैं लेकिन बाद में या तो सरकार बदल जाती है या फिर मंत्री और तैयार मसौदे गोलियों की तड़तड़ाहट में कहीं उड़ जाते हैं, फिर ढाक के तीन पात वाली कहावत दिखाई देती है। लोगों की मुख्यधारा में लाये जाने की बात होगी या फिर सेना की और दस पाँच टुकड़ी भूखे भेड़ियों के झुण्ड में फेंक दी जाएगी।

दुनिया की कोई भी विचारधारा हो, यदि वह समय चिंतन पर आधारित है और उसमें मनुष्य व जीव-जंतुओं सहित सभी प्राणियों का कल्याण निहित होता है लेकिन पृथ्वी पर साम्यवाद एक ऐसी विचारधारा है, जिसके संदर्भ में गंभीर चिंतन-मंथन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि मात्र कुछ समस्याओं के आधार पर और वह भी पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर, इस रास्ते को खोजा गया। यही कारण है जिस तेजी से कभी यह विचारधारा पनपी थी, उसी तरीके से अब यह अपने अंत की ओर अग्रसर है। राजनीतिक विश्लेषक अजय साहनी की मानें, तो हाल के नक्सलवादी के दबदबे वाले २२३ जिले थे, जो अब सिकुड़ कर १०७ रह गए हैं। कुछ भी कहें,पर भारत में नक्सल की उम्र अभी बहुत बची है। उसके कुछेक कारण हैं, एक तो नक्सलवाद को कलम और मगरमच्छ के आँसुओं से बहुत डोज दी जा रही है, दूसरा नक्सलवाद का नेटवर्क कई राज्यों में फैला है और नक्सलवाद से लड़ने के लिए अलग-अलग राज्यों की एक नीति के बजाय अलग-अलग नीति हैं, तीसरा नक्सल प्रभावित राज्यों में अशिक्षा और गरीबी भी इसका मूल कारण है इसके बाद प्रलोभन और भय। प्रलोभन यह कि जिस दिन नक्सलवाद जीत जायेगा, उस दिन देश में समता आ जाएगी, कोई गरीब नहीं रहेगा, ना किसी के पास आर्थिक परेशानी होगी न कोई दिक्कत, ख्वाब कुछ इस तरह दिखाया जाता है, जैसे कि इस खूनी लड़ाई में भाग लेने वाला हर कोई सीधा प्रधानमंत्री बन जायेगा। यह सब जिहाद से मिलती-जुलती प्रेरणा है। उसमें मरने के बाद जन्नत का ख्वाब दिखाया जाता है और इसमें जीत सुनिश्चित होने पर आज नक्सलवाद देश के लिए विध्वंसक साबित हो रहा है। इन कथित क्रांतिकारियों की गतिविधियों से देश की जनता त्राहि-त्राहि कर रही है। सुरक्षाबल और पुलिस के सैकड़ों जवानों सहित अनगिनत निर्दोष लोग इस कथित आंदोलन के शिकार हुए हैं। आदिवासी लोगों की मुख्य समस्या यह है कि इस खूनी विचारधारा का वो लोग शिकार बन रहे हैं।

पिछले कुछ महीनों से भारत सरकार की तरफ से जो ये संदेश देने की कोशिश की जा रही है कि नक्सली समस्या लगभग खत्म होने की कगार पर है और पाँच साल में इसका पूरा उन्मूलन हो जाएगा- ये गलत है। जब इस तरह की बात सरकार की तरफ से की जाती है, तो इसकी प्रतिक्रिया नक्सलियों में होती है और वो कुछ ऐसा करके दिखाने की कोशिश करते हैं कि वो अभी खत्म नहीं हुए हैं। वो ये जता देना चाहते हैं कि, हमारें में अभी भी शक्ति बची हुई है और हम आपके अर्धसैनिक बलों पर हमला कर सकते हैं और उन्हें

शेष पृष्ठ १६ पर

धर्म के नाम पर पाखण्ड क्यों?

(विवेक प्रिय आर्य, मथुरा-उ.प्र. 09719910557)

प्रत्येक प्राणी का यह स्वभाव होता है कि वह दुःख से बचना तथा सुख को पाना चाहता है। फिर मनुष्य तो सृष्टि का सबसे श्रेष्ठ प्राणी है, वह क्यों नहीं सुख की प्राप्ति के लिए पूर्ण पुरुषार्थ करेगा? आज संसार भर के प्रबुद्ध मनुष्य (चाहे वे किसी भी महत्वपूर्ण पद पर आसीन हों) संसार को सुखी बनाने का यत्न अपने-अपने ढंग से करते प्रतीत हो रहे हैं। परंतु इसके उपरांत भी आज सम्पूर्ण मानव समाज अशांति, आतंक, हिंसा, घृणा, मिथ्या, छल, कपट, ईर्ष्या, राग, द्वेष से ग्रस्त होकर अति दुःखी व अशांत हैं। विचार आता है कि क्या कारण है कि चिकित्सा करते रहने पर भी रोग बढ़ता ही जा रहा है? मेरा मानना है कि इस सब का मूल कारण सत्य और वास्तविकता से अनभिज्ञ रहना अथवा जानकर भी उसके अनुकूल व्यवहार न करना ही है। आज सारे संसार में विकास की होड़ लग रही है। हम छल से दूसरों को गिराकर उससे आगे जाना चाहते हैं। दूसरों की झोपड़ियाँ जलाकर अपने भव्य भवन बनाना चाहते हैं, दूसरों के तन से जीर्ण-शीर्ण वस्त्र भी छीनकर स्वयं बहुमूल्य वस्त्र पहनकर फैशन करना चाहते हैं तथा दूसरों का गला दबाकर स्वयं एकाकी अमर जीवन जीना चाहते हैं। क्या ऐसा जीवन हमारी सुख, शांति का विनाशक नहीं? क्या मानवीय हत्या का हनन करने वाला नहीं है? हमारा विकास तो तभी होगा, जब हमारा जीवन सत्यता से परिपूर्ण होगा। क्योंकि सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं होता। धर्म के नाम पर, ईश्वर के नाम पर, देवी-देवताओं के नाम पर जितना रक्तपात व वैमनस्यता संसार में हो रही है, संभवतः उतना किसी अन्य कारण से नहीं। धर्म के नाम पर यह पाप क्यों? धर्म और ईश्वर के नाम पर ईर्ष्या, राग, द्वेष, घृणा, हिंसा क्यों? हमें धर्म का ऐसा सच्चा स्वरूप संसार के सामने लाने का प्रयास करना होगा, जिसमें पाखण्ड, अंधविश्वास व असत्य का कोई स्थान न हो। यही विचार संसार के ऋषियों (ब्रह्मा से लेकर जैमिनी पर्यन्त) का रहा है। महर्षि दयानंद सरस्वती तो परमाणु से लेकर परमेश्वर तक का यथार्थ ज्ञान व उससे अपना व दूसरों का उपकार करना ही विद्वानों का कर्तव्य बताते हैं। दुर्भाग्यवश महाभारत के समय से वेद के नाम पर, धर्म के नाम पर, ईश्वर के नाम पर, देवी-देवताओं के नाम पर कुछ विकृतियों ने जन्म लिया और वेद केवल कर्मकाण्ड तक ही सीमित रह गया। उस वैदिक कर्मकाण्ड के नाम पर मांसाहार, व्यभिचार, पशुबलि, नरबलि, स्त्री व शूद्र वर्ग के प्रति हीन भावना, मदिरापान आदि कुरीतियाँ इस देश में फैल गईं। एक ईश्वर की जगह अनेक देवी-देवता प्रचलित होकर विश्व में हजारों मतमतान्तर चल पड़े।

सर्वशक्तिमान और सर्वसामर्थ्य सम्पन्न ईश्वर शक्ति के अस्तित्व में रहते हुए भी इन देवी-देवताओं (वह भी एक दो नहीं, चार छः नहीं, अपितु पूरे तैतीस करोड़) को प्रभाव में लाने की आवश्यकता क्यों हुई? इसका किसी के पास कोई तर्कसंगत उत्तर नहीं है। जीवन में मूर्तिपूजा का किसी रूप में कोई भी उपयोग संभव नहीं है और इस से कुछ भी प्राप्त कर पाना सम्भव नहीं, व्यक्ति जो कुछ प्राप्त करना चाहता है या करता है वह केवल अपने पौरुष और पुरुषार्थ भरे प्रयासों से प्राप्त करता है। लेकिन सहज और सरलतम रूप में प्राप्त करने की मनुष्य की स्वाभाविक मनोप्रवृत्ति ने उसे पौरुष और पुरुषार्थ से दूर ढकेल दिया और पूजा से वह कुछ भी प्राप्त नहीं कर सका। इस कारण देश और समाज पतित होता चला गया। समस्याएं बढ़ती गईं, समाधान संभव नहीं हो सका। देश पराधीन हो गया, विदेशी

आक्रमणकारी हमारी राजसत्ता को हथियाकर बैठ गये। अत्याचार होते रहे, समाज में हाहाकार मचता रहा, समाज लुटता-पिटता रहा पर कोई बचाने वाला पैदा ही नहीं हुआ। जिन कथित देवी-देवताओं पर हम विश्वास साधकर बैठे रहे, वह दीन-हीन स्थिति में मौन धारण कर देवालयों में बैठे काँप रहे थे। हमारी रक्षा करना तो दूर वह स्वयं अपनी रक्षा भी नहीं कर पा रहे थे। हम ढोल, मजीरा, शंख, झांझर और चिमटा लेकर उन पत्थर के देवी-देवताओं के सामने गीत गाते कीर्तन करते रहे। मौत के भय से थर-थर काँपते कायर और कुंठितजन कंठीमाला हाथ में लेकर ग्रहों, नक्षत्रों एवं राशियों में अपना भाग्य लेख पढ़ने के लिए जन्मकुण्डली बिछाकर बैठे रहे। मंदिरों-देवालयों में जाकर देवी-देवताओं की मूर्तियों के सामने माथा रगड़ते रहे लेकिन उनके दिव्य चक्षु इहलोक के पैशाचिक दुराचारों को कभी नहीं देख सके। विदेशी आक्रांता इन मूर्तियों को तोड़कर चकनाचूर करते रहे। उन्हें खण्ड-खण्ड कर कुओं, पोखरों में फेंका गया, पर न तो ये देवी देवता कुछ कर सके और न उनके पुजारी। बल्कि यह पुजारी तो असहाय और विवश होकर आंसू बहाते रहे। यदि इन्होंने इसके विपरीत स्वयं पौरुष की भाषा पढ़ी होती, धर्म और ईश्वर के सच्चे निराकार स्वरूप को समझा होता, तो कोई शक्ति इस देश की ओर आँख उठाकर नहीं देख पाती। सोमनाथ मंदिर की कहानी जब हमारे स्मृति पटल पर उभर कर आती है, तो आँखों में खून उतर आता है। हम केवल पौराणिक आख्याओं तक सीमित बने रहे। भूगोल से हम प्रारंभिक परिचय कभी प्राप्त नहीं कर सके। इसलिए धरती को कभी शेषनाग के फन पर टिका दिया, कभी कछुए की पीठ पर और कभी गाय के सींग पर। क्योंकि सभी जीवधारियों की कालावधि निश्चित है, अतः झूठ को स्थाई रूप देने की दृष्टि से इन तीनों को त्रिकालजयी बना दिया और धरती का गेंद रूप देकर इधर से उधर उठाकर देखते रहे। झूठ में हमारी इतनी अधिक आस्था है कि हमें अपने पूर्वजों की कही बात का भी ध्यान नहीं रहता। आर्यभट्ट और वराहमिहिर हमारे ही पूर्वज थे, जिन्होंने पृथ्वी, सूर्य और चन्द्रमा परिधि, उनका व्यास और उनकी आपस की दूरी की माप सटीक रूप में दी थी। लेकिन हमारे झूठ के क्षेत्र में वह कहीं बाधक न बन जाये इसलिए उसे जान-बूझकर दृष्टि से ओझल कर दिया। हमारे यहाँ महाभारत के महानायक कर्मयोगी श्रीकृष्ण और गीता के रूप में उपलब्ध उनकी वैचारिक धरोहर युगों-युगों तक मनु पुत्रों का मार्गदर्शन कर सकती है। लेकिन इन टिपकादासों ने उसकी विषयवस्तु की सहज विश्वसनीयता पर तमाम तरह के प्रश्नवाचक चिन्ह खड़े कर दिये हैं। योगीराज श्रीकृष्ण जैसे, अद्भुत व्यक्तित्व पर भी इन मिथ्यावाद के प्रणेता टिपकादासों ने अपनी अतृप्त यौन पिपासा को विभिन्न रूपों में उन पर निर्ममता से प्रत्यारोपित कर उन्हें रसिकबिहारी, छैलबिहारी, रासबिहारी, लीलाबिहारी और बांकेबिहारी जैसे तमाम तरह के नाम देकर उन्हें राधा के पैरों में महावर रचाने बैठा दिया।

आज धरती पर उपलब्ध सभी सुख सुविधाएं और उसके उपकरण स्वयं मानव ने पैदा किये हैं। किसी कल्पित देवी देवता का उसमें नाम मात्र का योगदान नहीं है। किंतु पाखण्डी-मिथ्यावादी अपने स्वार्थ हित में उसका विभिन्न रूपों में गुणगान करते चले आ रहे हैं। कालान्तर में धीरे-धीरे इस देवत्व भाव को समान भाव से पशु पक्षियों पर भी आरोपित कर दिया और अंत में यह देवता पत्थरों पर भी उकेरे जाने लगे। पराकाष्ठा की स्थिति तो यहाँ तक पहुँच गई कि ढेले पर कलावा बाँधकर उसे सीधे-सीधे गणेश भगवान बना दिया गया। इस देश में भिखारी से लेकर पुजारी तक माँगकर खाने वालों की फौज खड़ी होती चली गयी। ऋषि ने '**एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति**' का जो उपदेश दिया, इसके विपरीत बहुदेवतावाद का अंतहीन सिलसिला खड़ा हो गया, जो आज भी समाप्त होने का नाम नहीं ले रहा है। पत्थरों, धातुओं और लकड़ियों के टुकड़ों पर तमाम तरह के

देवी-देवताओं की विचित्र-विचित्र शक्लें उतारकर देवालयों, मंदिरों और घरों में खड़ी कर दी। यह देवी-देवता आज तक किसी को कुछ नहीं दे सके, बल्कि स्वयं इस कमाऊ समाज पर भार बन जाते हैं। हमारे ही पैदा किये हुए देवता, जो हमारी ही दी व्यवस्था पर जीवित हैं, हमें उन्हें के आगे भिखारी बनाकर बैठा दिया। वैसे सृष्टि नियम के विरुद्ध बातें सभी मतों में हैं, जैसे मुस्लिम् भाई कहते हैं कि हमारे पैगम्बर मोहम्मद साहब ने एक ही उंगली से चांद के दो टुकड़े कर दिये। इसी प्रकार हमारे पुराणों में सबसे अधिक चमत्कारिक बातें हैं, जैसे हनुमान ने अपने बचपन में ही सूर्य को गाल में रख लिया, कुंती कर्ण कान से उत्पन्न हुआ, योगेश्वर श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत अपनी उंगली पर उठा लिया, श्रीकृष्ण ने द्रोपदी का चीर बढ़ा दिया आदि। भूत-प्रेत, गण्डा, डोरी, श्राद्ध-तर्पण, फलित ज्योतिष, गृहों का नाराज होना या खुश होना तथा मूर्तिपूजा व अवतारवाद का मानना अंधविश्वास व पाखण्ड है। क्योंकि यह सब बातें सृष्टि नियम के विरुद्ध हैं। इसलिए इनको न मानकर वैदिक धर्म को मानना ही हर व्यक्ति के लिए श्रेयस्कर व लाभदायक होगा। वैदिक धर्म में ईश्वर के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करने के लिए संध्या करना (जिसे बृह्मयज्ञ कहते हैं), दूषित वातावरण को शुद्ध करने के लिए हवन करना (जिसे देवयज्ञ कहते हैं)। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए यम-नियमों से समाधि तक पहुँचने के लिए अष्टांग योग करना, दूसरों की भलाई के लिए परोपकार करना, वेदों सहित सभी आर्ष ग्रन्थें को पढ़ना और उनके अनुसार जीवन बनाना आदि मुख्य सिद्धांत वैदिक धर्म के हैं। इसलिए हम अपने जीवन को पवित्र रखना चाहते हैं तो हमें अन्य मतों व पन्थों को छोड़कर वैदिक धर्म अपनाना चाहिए, जिससे हम अपने परिवार, समाज, राष्ट्र अपने जीवन को सफलता की ऊंचाईयों को छूते हुए मोक्ष के अधिकारी बनें। ❑❑

पृष्ठ १३ का शेष

नुकसान पहुँचा सकते हैं। यह उन्होंने संदेश देने की कोशिश की है। दूसरी महत्वपूर्ण बात ये है कि राज्य पुलिस के एक जवान के घायल होने की भी खबर नहीं है, मरने की बात तो दूर रही, हालत बहुत चिंताजनक है। आज मुझे नहीं दिखता कि कोई ऐसी नीति हो, जिसके आधार पर भारत भर में माओबादियों के खिलाफ कोई अभियान चल रहा हो, सबकुछ अपनी-अपनी डफली और अपना-अपना राग के सिद्धांत पर चल रहा है।

माना जाता है कि भारत के कुछ छह सौ से ज्यादा जिलों में से एक तिहाई नक्सलवादी समस्या से जूझ रहे हैं। विश्लेषक मानते हैं कि नक्सलवादियों की सफलता की वजह उन्हें स्थानीय स्तर पर मिलने वाला समर्थन है। सरकार को चाहिए कि कोई ठोस कदम उठाए, जिससे हमारे जवान बार-बार अपने लहू बहाने के लिए मजबूर न हों। एक सैनिक की मौत के साथ एक पूरे परिवार के सपनों की और उम्मीदों की मौत हो जाती है। इसका दर्द नक्सली नहीं समझेंगे। क्योंकि उनके लिए तो ये गरीब जवान केवल "व्यवस्था के दलाल" हैं। और इस तरह की अमानवीय घटना को अंजाम देने वालों के समर्थन में सबसे पहले तथाकथित मानवाधिकार संगठन झंडा बुलंद कर देते हैं। बोलते हैं, सीआरपीएफ जबदस्ती करती है, एनकाउंटर फर्जी होते हैं

उन्हीं से मेरा यह सवाल है कि सुकमा में जो हुआ है, उसमें किसका दोष है? किसके मानवाधिकार का हनन हुआ है? क्या ये भी फर्जी एनकाउंटर था? है कोई जवाब! नहीं होगा.. क्योंकि जवाब देना इनके लिए शायद 'पॉलिटकली करेक्ट' नहीं होगा? लेकिन जवाब तो देना ही होगा। ध्यान रहे राष्ट्रकवि दिनकर ने कभी कहा था

जो चुप है, तटस्थ है, वक्त लिखेगा उनका भी अपराध।

❑❑

गुरु विरजानन्द से शिक्षा-प्राप्ति, सत्यार्थप्रकाश का लेखन और आर्यसमाज की स्थापना ऋषि दयानन्द जीवन के प्रमुख महान कार्य

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून)

ऋषि दयानन्द के जीवन एवं कार्यों का देश व विश्व में समुचित व यथार्थ मूल्यांकन नहीं हुआ है। इसका प्रमुख कारण लोगों की सत्य जानने के प्रति उपेक्षा, स्व-स्व मत-मतान्तरों के प्रति दुराग्रह आदर भाव और भौतिक सुखों की प्राप्ति आदि प्रमुख कारण प्रतीत होते हैं। यदि देश व विश्व के लोगों में सत्य के जानने की तीव्र लालसा व इच्छा शक्ति होती और स्व-स्व मतों का आग्रह न होता, वह सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग की भावना से युक्त होते, तो आज संसार में ऋषि दयानन्द को संसार में अब तक हुए महापुरुषों में सर्वश्रेष्ठ व ज्येष्ठ स्थन दिया जाता। हमारा सौभाग्य है कि एक पौराणिक और अल्पशिक्षित परिवार में जन्म लेकर भी हम आर्यसमाज से जुड़ सके और ऋषि दयानन्द के जीवन व साहित्य के द्वारा हम इस संसार और मनुष्य जीवन को उसके यथार्थ सत्य स्वरूप में जान सके। आज हमने इन विषयों की एक आर्यमित्र से भी चर्चा की और दोनों में ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज विषयक जो चर्चायें हुईं, उसमें यही निष्कर्ष सामने आया कि हम आर्यसमाज के अनुयायी अन्य मत-मतान्तरों एवं नास्तिकों की तुलना में कहीं ज्यादा भाग्यशाली हैं कि जिन्हें ईश्वर, जीव व प्रकृति सहित संसार और ईश्वर प्राप्ति के साधनों एवं साथ ही यज्ञ, योग, परोपकार, शाकाहारी जीवन, प्राणियों पर दया व उनकी रक्षा आदि का तथ्योक्त ज्ञान है। हमने यह भी अनुभव किया कि हमारी जो वर्तमान स्थिति है, वह ऐसी कदापि न होती यदि हम ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज से न जुड़ते।

ऋषि दयानन्द का यह महत्व किस कारण से है? इस पर विचार करें तो इसका कारण ऋषि दयानन्द को इस सृष्टि के सभी विषयों का सत्य ज्ञान, देश व समाज के हित में उनका प्रचार व उनकी विश्व के कल्याण की भावना थी। महाभारत काल के बाद और ऋषि दयानन्द से पूर्व अनेक महापुरुष हुए, वह विद्वान् भी पर्याप्त थे और उन्होंने प्रचार भी किया परन्तु वह ईश्वर, जीवात्मा तथा संसार विषयक उस ज्ञान को प्राप्त नहीं हो सके, जो ऋषि दयानन्द ने प्राप्त किया था व उसका देश-देशान्तर में प्रचार किया। ऋषि दयानन्द को यह ज्ञान अपने योग व ब्रह्मचर्य के बल सहित गुरु विरजानन्द सरस्वती की शिक्षा व वेदों के अध्ययन, अनुसंधान व सत्य अर्थों से प्राप्त हुआ, जो महाभारत काल के कुछ काल बाद हुए ऋषि जैमिनी के अतिरिक्त किसी अन्य विद्वान् को प्राप्त नहीं हुआ था। ऋषि जैमिनि जी ने भी मीमांसा दर्शन का प्रणयन तो किया परन्तु उन्होंने वेदों के प्रचार-प्रसार का वह कार्य नहीं किया, तब सम्भवतः इसकी आवश्यकता नहीं थी, जो ऋषि दयानन्द ने किया जिसके कारण आज हमारे पास वेद, उपनिषद्, दर्शन, मनुस्मृति, रामायण व महाभारत आदि अनेक ग्रन्थों के हिन्दी में सत्यार्थ भी उपलब्ध हैं।

ऋषि दयानन्द जिस काल में उत्पन्न हुए, वह घोर अविद्या का काल होने के साथ उन दिनों हमारा देश अंग्रेजों के पराधीन था। इससे पूर्व भी देश मुस्लिम शासकों का परतन्त्र रहा, जिनके काल में भारत को अपना सर्वस्व नष्ट करना पड़ा। धन्य हैं हमारे वह पूर्वज, जिन्होंने बाबर और औरंगजेब आदि क्रूर शासकों के काल में भी अपने धर्म और संस्कृति को सुरक्षित रखा। जिससे ऋषि दयानन्द ने शिवरात्रि के व्रत, अपनी बहिन व चाचा की मृत्यु के कारण उत्पन्न वैराग्य से

प्रभावित होकर अपने माता-पिता व घर छोड़कर ईश्वर व सत्य विद्याओं का अनुसंधान व खोज की। उन्होंने लगभग १६ वर्ष इस कार्य में लगाये। उन्होंने ईश्वर व जीवात्मा के सच्चे स्वरूप को जानकर गुरु विरजानन्द के परामर्श व आज्ञा सहित अपनी निज इच्छा से भी संसार से अविद्या का नाश कर वेदों के रूप में सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर प्रदत्त ज्ञान का जन-जन में प्रचार का अभियान व आन्दोलन आरम्भ किया। सत्य के प्रचार के लिए उन्होंने मिथ्या विश्वासों, मूर्तिपूजा, अवतारवाद, जन्म जातिव्यवस्था, फलित ज्योतिष, मृतक श्राद्ध, मत-मतान्तरों की अविद्यायुक्त मान्यताओं का खण्डन किया व विरोधियों से शास्त्रार्थ किये। इसका परिणाम यह हुआ कि देश व विश्व में वैचारिक क्रान्ति का जन्म हुआ और सभी मत-मतान्तरों को अपनी अपनी कमियों व खामियों का ज्ञान भी हुआ अन्यथा वह शास्त्रार्थ की चुनौती स्वीकार कर ऋषि दयानन्द की चुनौतियों का उत्तर देते। उत्तर नहीं दिया और न दे सके, यह इस बात को बताने के लिए पर्याप्त है कि उनके पास ऋषि दयानन्द द्वारा मत-मतान्तरों से पूछे गये प्रश्नों व आक्षेपों के उत्तर थे ही नहीं। आश्चर्य है कि आज भी वह सभी व उसके बाद भी उत्पन्न मत-मतान्तर पहले से भी अधिक अन्धविश्वासों के साथ समाज में प्रतिष्ठित हैं व फल-फूल रहे हैं।

ऋषि दयानन्द का पहला प्रमुख कार्य तो उनका गुरु विरजानन्द जी से आर्ष-शिक्षा को प्राप्त करना था जिससे वह वेदों के यथार्थ स्वरूप सहित वेदमन्त्रों के यथार्थ अर्थ जान सके। यदि यह न हुआ होता, तो फिर आज ऋषि दयानन्द ऋषि दयानन्द नहीं होते, अपितु दयानन्द अथवा स्वामी दयानन्द ही रहते जैसे कि आज अनेकानेक साधु संन्यासी व विद्वान् हैं। कोई उनको जानता भी न। गुरु विरजानन्द जी की शिक्षा ने उन्हें संसार के सभी विद्वानों से अलग किया, जिसका कारण उनकी प्रत्येक मान्यता का आधार वेद सहित सत्य व तर्क पर आधारित होने के साथ उनका सृष्टि क्रम के अनुकूल होना भी है। ऋषि दयानन्द के जीवन का दूसरा प्रमुख कार्य उनके द्वारा सत्य के रहस्यों का उद्घाटन करने वाला विश्व प्रसिद्ध, विश्व साहित्य में अनुपमेय, न भूतो न भविष्यति प्रकार के ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' का प्रणयन है। सत्यार्थप्रकाश ने हमें सत्य व असत्य की पहचान बताई। मत-मतान्तरों में क्या असत्य है और क्या सत्य, यह भी सत्यार्थप्रकाश के अध्ययन से ही ज्ञात हो सकता है व हुआ है। सत्यार्थप्रकाश से ईश्वर, जीवात्मा व सृष्टि के मूल स्वरूप के ज्ञान सहित मूल प्रकृति की विकृति इस संसार का यथार्थ ज्ञान भी होता है। समाज व्यवस्था कैसी हो, इसकी चर्चा करते हुए ऋषि दयानन्द मनुष्य के परिवेश व जन्म की महत्ता को महत्व न देते हुए मनुष्य के गुण, कर्म, स्वभाव, उसके चरित्र व कार्यों तथा उसकी सुशीलता आदि गुणों को महत्व देते हैं और सबके लिए वेदों पर आधारित पक्षपात से रहित समान शिक्षा व अध्ययन को महत्व व प्राथमिकता देते हैं।

स्वामी जी संस्कृत और आर्यभाषा हिन्दी को अंग्रेजी से अधिक महतव देते हैं जो कि उचित ही है। गोरक्षा का महत्व बताते हैं। उससे होने वाले आर्थिक व स्वास्थ्य विषयक लाभों की चर्चा करते हैं और गोहत्या व मांसाहार को पाप व अमानवीय बताकर उसका निषेध करते हैं। स्वामी जी विचारों की स्वतन्त्रता के पक्षधर थे परन्तु आजकल की तरह देश विरोधी बातें करने को वैचारिक स्वतन्त्रता न मानकर इसे दण्डनीय अपराध मानते थे, ऐसा उनके साहित्य को पढ़कर विदित होता है। सत्यार्थप्रकाश को पढ़कर हिन्दू व आर्य वैदिक धर्म की श्रेष्ठता से परिचित हो जाते हैं और वह ईसाई व मुसलमानों के धर्मान्तरण व इस प्रकार की गतिविधियों में फंसने से बच जाते हैं। इसके विपरीत आर्यसमाज के विद्वान् वेदों व वैदिक धर्म की सच्चाई व श्रेष्ठता का प्रचार कर दूसरे मतों के निष्पक्ष लोगों को वैदिक धर्म के सिद्धान्तों को स्वीकार कराने में भी सफल हो जाते हैं। यही कारण है कि आज किसी मत के विद्वान् में

वैदिक मान्यताओं पर आक्षेप करने का न साहस है और न योग्यता। वह जो करते हैं, वह सब परदे के पीछे छुप कर करते हैं। सत्यार्थप्रकाश के स्वाध्याय व अध्ययन से मनुष्य सच्चा मनुष्य जीवन जीने का लाभ प्राप्त करता है और ईश्वर, जीवात्मा सहित संसार को जानकर ईश्वर प्राप्ति के लक्ष्य व उसके साधनों को भी जानकर ईश्वर को सन्ध्या, यज्ञ, वेद व सत्यार्थप्रकाश आदि का स्वाध्याय करके प्राप्त कर लेता है। वह मांसाहार, नशा, अंडे, मछली, तले व फास्ट फूड आदि तामसिक पदार्थों के सेवन से बचता है और औरों की तुलना में स्वस्थ व अल्प व्यय में सुख व शान्ति का जीवन व्यतीत करता है। ऐसी बहुत सी बाते हैं, जिनका उल्लेख किया जा सकता है। पाठक स्वयं सत्यार्थप्रकाश का पाठ कर इन बातों की सत्यता की परीक्षा कर सकते हैं।

ऋषि दयानन्द के जीवन का तीसरा महत्वपूर्ण कार्य आर्यसमाज की स्थापना है। ऋषि दयानन्द ने १० अप्रैल, सन् १८७५ को मुम्बई के गिरिगांव मोहल्ले के काकड़वाड़ी में प्रथम आर्यसमाज की स्थापना की थी। आर्यसमाज के उद्देश्य, नियम व सिद्धान्त संसार में अद्वितीय व सर्वश्रेष्ठ हैं। यदि आर्यसमाज स्थापित न हुआ होता, तो वैदिकधर्मियों का संगठन न बनता। आर्यसमाज की स्थापना से आज तक विद्वानों ने संगठित होकर जो कार्य किये हैं, वह भी न होते और हमें आर्यसमाज से जुड़ने के कारण जो अकथनीय लाभ हुए हैं, वह हमें व हमारे दूसरे बन्धुओं को भी न होते। आर्यसमाज की स्थापना हो जाने पर ऋषि दयानन्द जी के अनुयायियों ने स्वामी जी को साधन उपलब्ध कराये। वह देश भर में प्रचारार्थ घूमे और इसके साथ ही समय समय पर पंचमहायज्ञविधि, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका सहित वेदभाष्य, संस्कारविधि, आर्याभिविनय, गोकरुणानिधि, व्यवहारभानु, आत्मकथा आदि का लेखन व परोपकारिणी सभा की स्थापना आदि कार्य किये, यह कार्य भी आर्यसमाज की स्थापना के परिणाम से हुए। ऋषि दयानन्द की मृत्यु के बाद विद्वानों ने आर्यसमाज के अन्तर्गत संगठित होकर वेदभाष्य व अनेकानेक ग्रन्थ लेखन सहित वेद प्रचार का जो महनीय कार्य किया, वह भी न होता। अतः आर्यसमाज की स्थापना ऋषि दयानन्द का एक महत्वपूर्ण कार्य है, जो इस सृष्टि के अन्तिम समय अर्थात् प्रलय तक अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखते हुए असत्य का खण्डन और सत्य का मण्डन व प्रचार करता रहेगा। इसी में संसार, प्रत्येक मनुष्य व प्राणीमात्र का हित व कल्याण जुड़ा हुआ है।

देश की आजादी का अधिकांश श्रेय भी ऋषि दयानन्द व आर्यसमाज के सत्य के प्रचार को ही जाता है। परतन्त्रता के काल में आर्यसमाज ने ही देश में डीएवी स्कूल व कालेजों सहित गुरुकुल खोलकर शिक्षा जगत में क्रान्ति की थी। आर्यसमाज ने ही देश को स्वामी श्रद्धानन्द, श्यामजी कृष्ण वर्मा, महात्मा हंसराज, लाला लाजपतराय, रामप्रसाद बिस्मिल, भाई परमानन्द, महादेव गोविन्द रानाडे, शहीद भगतसिंह सहित अनेक देशभक्त, धर्म व संस्कृति के शीर्ष विद्वान् व योद्धा दिये। आर्यसमाज की स्थापना का ही सुपरिणाम है कि आज देश स्वतन्त्र है। ऋषि दयानन्द की बातों को पूरा पूरा न मानने के कारण ही आज देश में अनेक गम्भीर समस्यायें हैं। यदि ऋषि दयानन्द जी की सभी बातों को देशवासियों ने मान लिया होता, तो आज देश की मुख्य समस्यायें न होतीं। वेदों के ज्ञान से शून्य पठित लोग जब देश संबंधी राजनैतिक दृष्टि से निर्णय करते हैं, तो उसमें अनेक खामियाँ होती हैं और वह गलत भी हो जाते हैं। आवश्यकता वेदों के ज्ञान के प्रचार व वैदिक जीवन व्यतीत करने की है, जिससे हम अच्छे नागरिक बनकर देश को सशक्त व मजबूत कर सकें और देश के सभी आन्तरिक व बाह्य शत्रुओं पर विजय पा सकें। इसके लिए देशवासियों में दृढ़ इच्छा शक्ति का होना आवश्यक है, जो सत्य व न्याय पर आधारित हो। इसी के साथ इस लेख को विराम देते हैं। इति ओ३म् शम्।

❑❑

वानप्रस्थ आश्रम-महर्षि दयानन्द सरस्वती की दृष्टि में

(संकलन : भावेश मेरजा, भरुच, मो-09879528247)

१. वानप्रस्थ आश्रम का अधिकार केवल 'द्विज' को है। अर्थात् केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य व्यक्ति ही वानप्रस्थ हो सकता है, शूद्र को वानप्रस्थ का अधिकार नहीं है। यहाँ इन वर्णों को वैदिक व्यवस्था अनुसार गुण-कर्म-स्वभाव आधारित समझना चाहिए, जन्म आधारित नहीं।

२. वानप्रस्थ का समय ५० वर्ष के उपरान्त है।

३. व्यक्ति को वानप्रस्थ संस्कार की विधि-अन्तर्गत अग्निहोत्र, सामगान आदि कर, अपने सब इष्ट मित्रों से मिलकर, पुत्र आदि पर सब घर का भार धरके जंगल का रास्ता लेना चाहिए।

४. जब गृहस्थ के शिर के केश श्वेत हो जाएं और त्वचा ढीली हो जाए तथा अपने पुत्र का पुत्र (या पुत्री) भी हो जाए, तब वन का रास्ता लेना चाहिए अर्थात् वानप्रस्थ होना चाहिए।

५. वानप्रस्थ ग्रहण करने से पूर्व व्यक्ति को अपनी पत्नी, पुत्र, भाई-बन्धु, पुत्रवधु आदि को गृहाश्रम विषयक सब शिक्षा प्रदान करनी चाहिए और तत्पश्चात् वन की ओर यात्रा की तैयारी करनी चाहिए।

६. व्यक्ति को गृहस्थ में रहते हुए जिन उत्तमोत्तम आहार तथा वस्त्र आदि का उपभोग वह करता था, उन सब पदार्थों का त्याग कर वानप्रस्थ होना चाहिए।

७. अपनी पत्नी को व्यक्ति चाहे तो अपने पुत्रों के पास-विशेष रूप से अपने ज्येष्ठ पुत्र के पास- रख कर स्वयं वानप्रस्थ हो सकता है और चाहे तो उसे अपने साथ वन में भी ले जा सकता है।

८. अपने पुत्रों को यह समझा कर वानप्रस्थ ग्रहण करना चाहिए कि वे अपनी माँ की यथावत् सेवा करते रहें।

९. अगर पत्नी घर में रहती है, तो उसे भी इस बात की शिक्षा करके वानप्रस्थ में जाना चाहिए कि तुम अपने पुत्र आदि को धर्म मार्ग में चलने के लिए और अधर्म से हटाने के लिए शिक्षा करती रहना।

१०. व्यक्ति को संसार के बहुत प्रकार के बड़े बड़े अज्ञान जनित दुःख आदि मोहों से पृथक् होकर वानप्रस्थ होना चाहिए।

११. वानप्रस्थ को घर का त्याग कर वन या अरण्य में बसना चाहिए।

१२. वानप्रस्थ को अग्निहोत्र करने की हवन कुण्ड आदि सब साधन सामग्री अपने साथ ले जानी चाहिए।

१३. वानप्रस्थ को अन्न, शाक, मूल, फल, फूल, कन्द आदि के द्वारा पंचमहायज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए और केवल अपना निर्वाह ही नहीं, बल्कि इन पदार्थों से अतिथियों की भी सेवा करनी चाहिए।

१४. वानप्रस्थ को अपने आत्मा को निश्चित करना चाहिए तथा अपनी इन्द्रियों को जीतना चाहिए अर्थात् अपनी इन्द्रिय अधर्म में प्रवृत्त न हो सके तथा सदैव धर्म में ही प्रवृत्त रहे ऐसी वश में रखनी चाहिए। उसे दृढ़ेन्द्रिय - जितेन्द्रिय होकर रहना चाहिए।

१५. वानप्रस्थ को पठन-पाठन में नित्य युक्त रहना चाहिए। उसे जितात्मा तथा सब का मित्र बनकर रहना चाहिए। उसे अपनी इन्द्रियों का नित्य दमन - नियन्त्रण करते रहना चाहिए।

१६. वानप्रस्थ को सदा विद्या दान करते रहना चाहिए, सब पर दया रखनी चाहिए और किसी से कुछ भी पदार्थ लेने की इच्छा नहीं करनी चाहिए।

१७. वानप्रस्थ को अपने शरीर सुख के लिए अति प्रयत्न नहीं करने चाहिए।

१८. वानप्रस्थ को 'ब्रह्मचारी' रहना चाहिए अर्थात् भले साथ में पत्नी हो फिर भी उसे कुछ भी विषय चेष्टा नहीं करनी चाहिए और भूमि पर शयन करना चाहिए।

शेष पृष्ठ २३ पर

दलित उद्धारक के रूप में वीर सावरकर

(डॉ. विवेक आर्य,मो0:-०६३१०६७६०६०)

क्रांतिकारी वीर सावरकर का स्थान भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अपना ही एक विशेष महत्व रखता है। सावरकर जी पर लगे आरोप भी अद्वितीय थे, उन्हें मिली सजा भी अद्वितीय थी। एक तरफ उन पर आरोप था - अंग्रेज सरकार के विरुद्ध युद्ध की योजना बनाने का, बम बनाने का और विभिन्न देशों के क्रांतिकारियों से सम्पर्क करने का, तो दूसरी तरफ उनको सजा मिली थी पूरे ५० वर्ष तक दो सश्रम आजीवन कारावास। इस सजा पर उनकी प्रतिक्रिया भी अद्वितीय थी कि ईसाई मत को मानने वाली अंग्रेज सरकार कब से पुनर्जन्म अर्थात् दो जन्मों को मानने लगी। वीर सावरकर को ५० वर्ष की सजा देने के पीछे अंग्रेज सरकार का मंतव्य था कि उन्हें किसी भी प्रकार से भारत अथवा भारतीयों से दूर रखा जाये। जिससे वे क्रांति की अग्नि को न भड़का सकें।

सावरकर के लिए शिवाजी महाराज प्रेरणास्रोत थे। जिस प्रकार औरंगजेब ने शिवाजी महाराज को आगरे में कैद कर लिया था, उसी प्रकार अंग्रेज सरकार ने भी वीर सावरकर को कैद कर लिया था। जैसे शिवाजी महाराज ने औरंगजेब की कैद से छूटने के लिए अनेक पत्र लिखे, उसी प्रकार से वीर सावरकर ने भी अंग्रेज सरकार को पत्र लिखे। जब उनकी अंडमान की कैद से छूटने की योजना असफल हुई, जब उसे अनसुना कर दिया गया, तब वीर शिवाजी की तरह वीर सावरकर ने भी कूटनीति का सहारा लिया क्यूंकि उनका मानना था अगर उनका सम्पूर्ण जीवन इसी प्रकार अंडमान की अंधेरी कोठरियों में निकल गया, तो उनका जीवन व्यर्थ ही चला जायेगा। इसी रणनीति के तहत उन्होंने सरकार से सशर्त मुक्त होने की प्रार्थना की, जिसे सरकार द्वारा मान तो लिया गया परन्तु उन्हें रत्नागिरी में १६२४ से १६३७ तक राजनीति क्षेत्र से दूर नजरबंद रहना था। विरोधी लोग इसे वीर सावरकर का माफीनामा, अंग्रेज सरकार के आगे घुटने टेकना और देशद्रोह आदि कहकर उनकी आलोचना करते हैं, जबकि यह तो आपातकालीन धर्म अर्थात् कूटनीति थी।

मुस्लिम तुष्टिकरण को प्रोत्साहन देने के लिए सरकार ने अंडमान द्वीप के कीर्ति स्तम्भ से वीर सावरकर का नाम हटा दिया और संसद भवन में भी उनके चित्र को लगाने का विरोध किया। जीवन भर जिन्होंने अंग्रेजों की यातनायें सहीं, मृत्यु के बाद उनका ऐसा अपमान करने का प्रास किया गया । उनका विरोध करने वालों में कुछ दलित वर्ग की राजनीति करने वाले नेता भी थे, जिन्होंने अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षा को पूरा करने के लिए उनका विरोध किया था। दलित वर्ग के मध्य कार्य करने का वीर सावरकर को अवसर उनके रत्नागिरी प्रवास के समय मिला। ८ जनवरी, १६२४ को सावरकर जी रत्नागिरी में प्रविष्ट हुए तो उन्होंने घोषणा की कि वे रत्नागिरि में दीर्घकाल तक आवास करने आए हैं और छुआछूत समाप्त करने का आन्दोलन चलाने वाले हैं। उन्होंने उपस्थित सज्जनों से कहा कि अगर कोई अछूत वहाँ हो, तो उन्हें ले आयें और अछूत महार जाति के बंधुओं को अपने साथ बैलगाड़ी में बैठा लिया। पाठकगण! उस समय में फैली जातिवाद की कुप्रथा का सरलता से आंकलन कर सकते हैं कि जब किसी भी शूद्र को सवर्ण के घर में प्रवेश तक निषेध था। नगर पालिका के भंगी को नारियल की नरेली में चाय डाली

जाती थी। किसी भी शूद्र को नगर की सीमा में धोती के स्थान पर अंगोछा पहनने की ही अनुमति थी। रास्ते में महार की छाया पड़ जाने पर अशौच की पुकार मच जाती थी। कुछ लोग महार के स्थान पर बहार बोलते थे जैसे कि महार कोई गाली हो। यदि रास्ते में महार की छाया पड़ जाती थी तो ब्राह्मण लोग दोबारा स्नान करते थे। न्यायालय में साक्षी के रूप में महार को कटघरे में खड़े होने की अनुमति न थी। इस भयंकर दमन के कारण महार समाज का मानो साहस ही समाप्त हो चुका था।

इसके लिए सावरकर जी ने दलित बस्तियों में जाने का, सामाजिक कार्यों के साथ-साथ धार्मिक कार्यों में भी दलितों के भाग लेने का और सवर्ण एवं दलित दोनों के लिए पतितपावन मंदिर की स्थापना का निश्चय किया, जिससे सभी एक स्थान पर साथ-साथ पूजा कर सकें और दोनों के मध्य दूरियों को दूर किया जा सके।

१. रत्नागिरी प्रवास के १०-१५ दिनों के बाद में सावरकर जी को मढ़िया में हनुमान जी की मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा का निमंत्रण मिला। उस मंदिर के देवल पुजारी से सावरकर जी ने कहा कि प्राण प्रतिष्ठा के कार्यक्रम में दलितों को भी आमंत्रित किया जाये। जिस पर वह पहले तो न करता रहा पर बाद में मान गया। श्री मोरेश्वर दामले नामक किशोर ने सावरकर जी से पूछा कि आप इतने साधारण मनुष्य से व्यर्थ इतनी चर्चा क्यों कर रहे थे? इस पर सावरकर जी ने कहा- "सैकड़ों लेख या भाषणों की अपेक्षा प्रत्यक्ष रूप में किये गए कार्यों का परिणाम अधिक होता है। इसे अबकी हनुमान जयंती के दिन तुम स्वयं देख लेना।"

२. २६ मई १९२९ को रत्नागिरी में श्री सत्य नारायण कथा का आयोजन किया गया, जिसमें सावरकर जी ने जातिवाद के विरुद्ध भाषण दिया, जिससे कि लोग प्रभावित होकर अपनी-अपनी जातिगत बैठक को छोड़कर सभी महार-चमार एकत्रित होकर बैठ गए और सामान्य जलपान हुआ।

३. १९३४ में मालवान में अछूत बस्ती में चायपान, भजन कीर्तन, अछूतों को यज्ञोपवीत ग्रहण, विद्यालय में समस्त जाति के बच्चों को बिना किसी भेदभाव के बैठाना, सहभोज आदि हुए।

४. १९३७ मे रत्नागिरी से जाते समय सावरकर जी के विदाई समारोह में समस्त भोजन अछूतों द्वारा बनाया गया, जिसे सभी सवर्णों अछूतों ने एक साथ ग्रहण किया था।

५. एक बार शिरगांव मे एक चमार के घर पर श्री सत्य नारायण की पूजा थी, जिसमें सावरकर जी को आमंत्रित किया गया था। सावरकर जी ने देखा कि चमार महोदय ने किसी भी महार को आमंत्रित नहीं किया था। उन्होंने तत्काल उससे कहा कि आप हम ब्राह्मणों के अपने घर में आने पर प्रसन्न होते हो पर मैं आपका आमंत्रण तभी स्वीकार करूँगा, जब आप महार जाति के सदस्यों को भी आमंत्रित करेंगे। उनके कहने पर चमार महोदय ने अपने घर पर महार जाति वालों को आमंत्रित किया था।

६. १९२८ में शिवभांगी में विठ्ठल मंदिर में अछूतों के मंदिरों में प्रवेश करने पर सावरकर जी का भाषण हुआ।

७. १९३० में पतितपावन मंदिर में शिवू भंगी के मुख से गायत्री मंत्र के उच्चारण के साथ ही गणेश जी की मूर्ति पर पुष्पांजलि अर्पित की गई।

८. १९३१ में पतिपावन मंदिर का उद्घाटन स्वयं शंकराचार्य श्री कूर्तकोटि के हाथों से हुआ एवं उनकी पाद्यपूजा चमार नेता श्री राज भोज द्वारा की गयी थी। वीर सावरकर ने घोषणा की कि इस मंदिर में समस्त हिंदुओं को पूजा का अधिकार है और पुजारी पद पर गैर ब्राह्मण की नियुक्ति होगी।

इस प्रकार के अनेक उदाहरण वीर सावरकर जी

के जीवन में हमें मिलते हैं, जिससे दलित उद्धार के विषय में उनके विचारों को, उनके प्रयासों को हम जान पाते हैं। सावरकर जी के बहुआयामी जीवन के विभिन्न पहलुओं में से सामाजिक सुधारक के रूप में वीर सावरकर को स्मरण करने का मूल उद्देश्य दलित समाज को विशेष रूप से सन्देश देना है। जिसने राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए सवर्ण समाज द्वारा अछूत जाति के लिए गए सुधार कार्यों की उपेक्षा कर दी है। और उन्हें केवल विरोध का पात्र बना दिया है।

वीर सावरकर महान क्रांतिकारी श्याम जी कृष्ण वर्मा के क्रांतिकारी विचारों से लन्दन में पढ़ते हुए संपर्क में आये थे। श्यामजी कृष्ण वर्मा स्वामी दयानंद के शिष्य थे। स्वामी दयानंद के दलितों के उद्धार करने रूपी चिंतन को हम स्पष्ट रूप से वीर सावरकर के चिंतन में देखते हैं।

❑❑

पृष्ठ २० का शेष

१९. वानप्रस्थ को अपने पास विद्यमान अपने पदार्थों या आश्रित व्यक्तियों में ममत्व नहीं रखना चाहिए।

२०. वानप्रस्थ को सब से मित्र भाव और सब प्राणीमात्र पर अनुकम्पा - कृपा रखने वाला होना चाहिए।

२१. वानप्रस्थ को वृक्ष के मूल में वास करना चाहिए अर्थात् किसी वृक्ष के नीचे या पर्णकुटि आदि में रहना चाहिए।

२२. वानप्रस्थ को शान्ति तथा विद्वता प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

२३. वानप्रस्थ को तप तथा धर्म का अनुष्ठान - पालन करना चाहिए तथा सत्य में श्रद्धा रखनी चाहिए।

२४. वानप्रस्थ को एकान्त में निवास कर योगाभ्यास, शास्त्रों का विचार और महात्माओं का संग करके अपने आत्मा तथा परमात्मा का साक्षात्कार करने में प्रयत्न करते रहना चाहिए।

२५. वानप्रस्थ को भिक्षाचरण से निर्वाह करना चाहिए।

२६. वानप्रस्थ को निर्मल-निर्दोष-निष्पाप होकर प्राणद्वार से - प्राण के द्वारा - योग साधन आदि से - अविनाशी तथा पूर्ण पुरुष परमात्मा को प्राप्त कर आनन्दित होने के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए।

२७. वानप्रस्थ को अग्निहोत्र कर दीक्षित होकर व्रत, सत्याचरण और श्रद्धा को प्राप्त करने की इच्छा - संकल्प करना चाहिए।

२८. वानप्रस्थ को विविध प्रकार की तपश्चर्या, सत्संग, योगाभ्यास, सुविचार आदि के द्वारा ज्ञान और पवित्रता सम्पादित करनी चाहिए।

२९. वानप्रस्थ को आत्मा तथा परमात्मा के ज्ञान के लिए विविध प्रकार की 'उपनिषद्' अर्थात् ज्ञान और उपासना विधायक श्रुतियों के अर्थों का विचार करते रहना चाहिए।

३०. वानप्रस्थ वानप्रस्थ को परमेश्वर का ठीक ठीक विचार करके सब विद्याओं को जान लेने का प्रयत्न करना चाहिए।

३१. वानप्रस्थ को धर्म-अधर्म और सत्य-असत्य के विषय में निर्णय किया जा सके इसलिए वानप्रस्थ आश्रम की योजना की गई है।

३२. वानप्रस्थ को चाहिए कि अपने आत्मा को अजर-अमर जाने।

३३. वानप्रस्थ को अपने आत्मा में परमात्मा को धारण करना चाहिए।

३४. वानप्रस्थ को जब तक संन्यास ग्रहण करने इच्छा न हो, तब तक वानप्रस्थ ही रहना चाहिए।

३५. वानप्रस्थ को जब संन्यास ग्रहण करने की इच्छा हो, तब अपनी पत्नी को अपने पुत्रों के पास भेज देवे और फिर संन्यास ग्रहण करना चाहिए।

(महर्षि दयानन्द रचित सत्यार्थ प्रकाश, संस्कारविधि, उपदेश-मंजरी आदि से संकलित)

❑❑

महर्षि दयानन्दाभिमत मुक्ति मीमांसा

(डॉ. रमेश दत्त मिश्र,फैजाबाद मो0:-०९४५४५९६१९२)

महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश के नवम समुल्लास के प्रारम्भ में मुक्ति के सन्दर्भ में यजुर्वेद के अध्याय चालीस का चौदहवाँ मंत्र उद्धृत किया है, जो बहुत ही प्रीतिकर है, मंत्र इस प्रकार है-

"विद्यां चाऽविद्यां च यस्तद्वेदोभयाऽसह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।"

जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ - साथ ही जानता है, वह अविद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु तर के विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है"

ब्रह्मानन्द की प्राप्ति ही मोक्ष या मुक्ति है। मुक्ति वैदिक अवधारणा है। इसे महर्षि दयानन्द जी ने वेदादि शास्त्रों से जाना था। योगाभ्यास और समाधि के द्वारा इसकी अनुभूति की थी। यही कारण है कि उन्होंने मुक्ति जैसे सूक्ष्म विषय की बड़ी गम्भीर और विशद विवेचना की है। पश्चिमी दार्शनिक इस विषय में मौन हैं। वे मोक्ष सम्बन्धी सूक्ष्म विवेचन तक नहीं पहुँच पाये। इसका कारण यह है कि उनके पास न तो वेदादिशास्त्र उपलब्ध थे और न ही वे योगाभ्यास और समाधि जैसी आध्यात्मिक क्रियाओं से परिचित थे। सुकरात, प्लेटो, अरस्तु, देकार्त, स्पिनोजा, लाईबनित्ज, बर्कले, काण्ट, हेंगल आदि पश्चिमी दार्शनिकों ने भौतिकवाद से ऊपर उठकर आत्मा, परमात्मा आदि विषयों पर काफी विचार किये हैं। फिर भी महर्षि दयानन्द जी के दर्शन की तरह उनके दर्शन में कोई तारतम्यता और गहराई देखने को नहीं मिलती। मुक्ति के सम्बन्ध में उनकी कोई स्पष्ट धारणा नहीं है। आज भी पश्चिमी दार्शनिकों के लिये यह पहेली बनी हुई है।

संसार की सारी समस्याओं में दुःख सबसे बड़ी समस्या है। मनुष्य ही नहीं समस्त प्राणी जगत् इससे बचना चाहता है। दुःख किसी को प्रिय नहीं लगता। इसलिए महर्षि दयानन्द जी के अनुसार दुःख ही बन्धन है और बन्धन से छूटने के लिये सारे जीव आतुर हैं। महर्षि दयानन्द जी ने सांख्य दर्शन की तरह यह दुःख तीन प्रकार का बतलाया है और इन दुःखों से छूटने को ही मुक्ति कहा है-

"जो **आध्यात्मिक** अर्थात् शरीर-सम्बन्धी पीड़ा, **आधिभौतिक** जो दूसरे प्राणियों से दुःखित होना, **आधिदैविक** जो अतिवृष्टि, अतिताप, अतिशीत, मन, इन्द्रियों की चंचलता से होता है, इस त्रिविध दुःख को छुड़ाकर मुक्ति पाना अत्यन्त पुरुषार्थ है।"

अब यहाँ प्रश्न उठता है कि जीव बन्धन में कैसे फँस जाता है? क्या जीव का बन्धन स्वाभाविक है या किसी निमित्त से होता है? इसके उत्तर में महर्षि दयानन्द जी कहते हैं कि जीव बन्धन स्वाभाविक नहीं है, अपितु निमित्त से होता है। जीव स्वभाव से पवित्र है, किन्तु अल्पज्ञ होने के कारण अज्ञान, अधर्म में फँसकर जन्म-मरण के बन्धन में आ जाता है और दुःख भोगता है। इसलिए जीव स्वभाव से न बद्ध है और न मुक्त। यदि जीव को स्वभाव से बद्ध और मुक्त माना जाय तो स्वभाव के अविनाशी होने से उससे छुटकारा पाना संभव नही है, क्योंकि स्वभाव वस्तु का अपना स्वाभाविक गुण है। उसके न रहने पर वस्तु का अस्तित्व ही खत्म हो जायेगा। जैसे आग का स्वाभाविक अर्थात् हमेशा साथ रहने वाला गुण रूप और दाह है। रूप और दाह के न रहने पर व्यवहार में आग का अस्तित्व ही खत्म

हो जायेगा। इसी प्रकार स्वभाव वस्तु का स्वाभाविक गुण होने के कारण उससे कभी नहीं छूट सकता। इसी तरह यदि जीव स्वभाव से बद्ध और मुक्त है तो वह अपना स्वभाव कभी नहीं छोड़ सकता। कहने का भाव यह है कि यदि वह बद्ध है, तो हमेशा बँधा ही रहेगा मुक्त कभी नहीं हो सकता, और यदि वह मुक्त है, तो हमेशा मुक्त ही रहेगा, कभी बद्ध नहीं हो सकता। इसलिए बन्धन स्वभाव से नहीं, अपितु निमित्त होता है। निमित्त का अर्थ है- बन्धन किसी कारण से होता है। बन्धन किस कारण से होता है? इसके उत्तर में महर्षि दयानन्द जी कहते हैं कि बन्धन अज्ञान एवं अधर्म के कारण होता हैं। कहने का भाव यह है कि अज्ञान ही बन्धन का निमित्त कारण है। उसी के कारण जीव की अधर्माचरण में प्रवृत्ति होती है। अज्ञान को महर्षि दयानन्द जी ने अविद्या भी कहा है। आचार्य शंकर अविद्या को परमेश्वर की जगत् निर्मात्री शक्ति मानते हैं। इसी कारण परमेश्वर जीव और जगत् के रूप में प्रतीत होता है। आचार्य शंकर के द्वारा अविद्या का किया गया यह अर्थ महर्षि दयानन्द को मान्य नहीं है। उनके दर्शन में अविद्या का अर्थ वही है, जो योगसूत्र के रचयिता महर्षि पतंजलि जी मानते हैं। अविद्या का अर्थ करते हुए महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं- "जिससे तत्वस्वरूप न जान पड़े, अन्य में अन्य ही बुद्धि होवे,वह अविद्या कहाती है।" कहने का भाव यह है कि वस्तुओं का सही ज्ञान न होना ही अविद्या है। उदाहरण के लिये अपने शरीर को स्थायी समझ लेना अविद्या है। इससे स्पष्ट है कि अविद्या एक प्रकार का मिथ्या या विपरीत ज्ञान है। महर्षि दयानन्द जी ने योगसूत्र के आधार पर चार प्रकार के विपरीत या मिथ्या ज्ञान को अविद्या कहा है, जो इस प्रकार है-

१. अनित्य संसार और देहादि में नित्य बुद्धि होना अविद्या का पहला प्रकार है।

२. अपवित्र में पवित्र बुद्धि होना अविद्या का दूसरा प्रकार है।

३. दुःख में सुख वृद्धि होना अविद्या का तीसरा प्रकार है।

४. अनात्मा में आत्मबुद्धि रखना अविद्या का चौथा प्रकार है।

ये चार प्रकार के मिथ्या या विपरीत ज्ञान अविद्या कहलाते हैं। यही अविद्या संसार के समस्त अज्ञानी जीवों को जन्म-मरण के बन्धन में बांधकर नचाती है। इसी के वशीभूत होकर मनुष्य चोरी, डकैती, हिंसा, व्यभिचार, आतंकवाद, मिथ्याभाषण आदि पाप करता है और सर्वव्यापक, निराकार, सर्वशक्तिमान, अजन्मा, न्यायकारी, पवित्र आदि उत्तम गुणों से युक्त एक ईश्वर से भिन्न दुर्गा, काली, शिव, राम, कृष्ण, हनुमान, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मदसाहब, कबीर नानक आदि अनेक मरे हुए स्त्रियों और पुरुषों तथा पेड़, पत्थर, नदी, कब्र, आज के बहुचर्चित पाखण्डी धर्मगुरुओं की पूजा एवं उपासना में प्रवृत्त होता है। ये सब अविद्या के ही रूप हैं। इसी कारण महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं - "अपवित्र, मिथ्या भाषणादि कर्म पाषाण मूर्त्यादि की उपासना और मिथ्या ज्ञान से बन्ध होता है।" महर्षि दयानन्द जी के इस कथन का अभिप्राय यही है कि मिथ्याज्ञान, असत् कर्म तथा अनुचित उपासना से ही जीव बन्धन में फँसता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि बन्धन का मूल कारण अविद्या है। अविद्या जब तक दूर नहीं जीव तब तक बन्धन में पड़ा रहता है। यहाँ प्रश्न उठता है कि अविद्या कैसे दूर होती है? इसके उत्तर में महर्षि दयानन्द जी का कहना है कि अविद्या विद्या से दूर होती है। विद्या क्या है? इस विषय में महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं - "जिससे पदार्थों का यथार्थ स्वरूप बोध होवे, वह विद्या कहाती है।" इस कथन का आशय यही है कि जो वस्तु जैसी है, उसको वैसी ही जानना विद्या है। उदाहरण के लिये अपनी शरीर को अस्थायी समझना विद्या है। जब व्यक्ति की आत्मा में विद्या का प्रकाश हो जाता है, तब वह अनित्य में अनित्य, अपवित्र में अपवित्र,

दुःख में दुःख, अनात्मा में अनात्मा एवं नित्य में नित्य, पवित्र में पवित्र, सुख में सुख, आत्मा में आत्मा को देखता और मानता है। इस प्रकार यथार्थ ज्ञान होने पर संसार के प्रति आसक्ति नहीं रह जाती। इससे कर्मों का नाश हो जाता है। और फिर जीव का पुनर्जन्म नहीं होता। यही मुक्ति है।

मुक्ति अनित्य है, नित्य नहीं, क्योंकि यह जीवन का स्वरूप या स्वाभाविक गुण नहीं है। इसलिये महर्षि दयानन्द जी इसे साधनजन्य मानते हैं। महर्षि दयानन्द जी के अनुसार विवेक, वैराग्य, षट्कसम्पत्ति और मुमुक्षुत्व- ये चार मुक्ति प्राप्ति के साधन हैं।

पहला साधन **विवेक** है। जो मुक्ति प्राप्त करना चाहता है, उसे सत्पुरुषों का संग करना जरूरी है। इससे विवेक अर्थात् सत्यासत्य, धर्माधर्म, कर्तव्याकर्तव्य का निश्चय होता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक जीवात्मा को अपने स्वरूप का पूर्ण होना चाहिए। उसे यह जानना चाहिए कि वह अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय-पाँचकोशों, जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति तीन अवस्थाओं तथा स्थूल, सूक्ष्म और कारण-तीन शरीरों से पृथक् है। जीवात्मा चेतन तत्व है। ये पाँचकोश तथा तीन शरीर जड़ हैं। ये पाँचकोश, तीन अवस्थाएँ तथा तीन शरीर जीवात्मा की विशेष स्थिति को प्रकट करते हैं। जीवात्मा को इनसे पृथक् जानना मुक्ति मार्ग पर चलने का सबसे पहला साधन है। इसी का नाम विवेक है। जीवात्मा अच्छे और बुरे सभी कार्यों का कर्ता और भोक्ता है। बिना इसकी प्रेरणा के मन और शरीर कोई कार्य नहीं कर सकते। अच्छे कार्य करने पर मन में आनन्द, उत्साह, और निर्भयता तथा बुरे कार्यों से मन में भय, शंका, लज्जादि अन्तर्यामी परमात्मा की प्रेरणा से अपने आप ही उत्पन्न होते हैं। इसलिए अन्तर्यामी परमात्मा की प्रेरणा के अनुकूल कार्य करना उचित है, क्योंकि इससे धर्माचरण में वृद्धि होती और सुख की प्राप्ति होती है। सुखी जीवात्मा ही मुक्ति प्राप्त कर सकता है। इस बात का विवेक अर्थात् सही ज्ञान जीवात्मा को होना चाहिए।

दूसरा साधन **वैराग्य** है। सत्याचरण का अनुष्ठान और असत्याचरण का त्याग करना वैराग्य है।

तीसरा साधन **षट्कसम्पत्ति** है। शम्, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान ये छह षट्कसम्पत्ति हैं। अपनी आत्मा और अन्तः करण को अधर्माचरण से हटाकर धर्माचरण में सर्वदा प्रवृत्त रखना, **शम्** कहलाता है। इन्द्रियों और शरीर को व्यभिचार आदि बुरे कर्मों से हटाकर अच्छे कर्मों में लगाना, **दम** है। दुष्ट कर्म करने वालों से दूर रहना अर्थात् विलासी मनुष्यों का साथ न करना, **उपरति** कहलाता है। निन्दा, स्तुति, हानि और लाभ में हर्ष या शोक को छोड़कर मुक्ति साधनों में लगे रहना, **तितिक्षा** है। वेदादि सत्यशास्त्र और इनके बोध से पूर्ण आप्त विद्वान् व्यक्तियों पर विश्वास करना **श्रद्धा** है। चित्त को बाह्य विषयों से हटाकर एकाग्र करना **समाधान** है।

चौथा साधन **मुमुक्षुत्व** है। मुक्ति के प्रति अत्यधिक प्रेम रखना, मुमुक्षुत्व हैं। जिस प्रकार भूखे व्यक्ति को भोजन के सिवाय और कुछ अच्छा नहीं लगता, उसी प्रकार मुक्ति के इच्छुक जीवात्मा को मुक्ति और उसके साधनों को छोड़कर और कुछ अच्छा नहीं लगता। इन चार साधनों के अतिरिक्त महर्षि दयानन्द जी ने मुक्ति प्राप्ति के चार अनुबन्ध अर्थात् सहायक साधन भी बतलाये हैं। पहला, ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के लिए जीवात्मा को अधिकारी होना चाहिए। दूसरा, उसे सम्बन्ध अर्थात् वेद शास्त्रों और मुक्ति के साधनों का ज्ञान होना चाहिए और उनका अनुगमन करना चाहिए। तीसरा, 'विषयी' होना चाहिए, और चौथा उसे 'प्रयोजन' प्राप्त कर लेना चाहिए अर्थात् सब दुःखों से निवृत्ति और मुक्ति के परमानन्द को प्राप्त करना चाहिए।

क्रमशः

पृष्ठ ७ का शेष

कठोपनिषद् की व्याख्या है)। जहाँ वह अणु है, वहाँ ब्रह्म उससे भी अणुतर है और उसकी गुहा में निहित है। यह उपदेश भी वेदों में कई बार इसी प्रकार आता है, यथा-

त्रीण पदानि निहिता गुहास्य (यजु० ३२/८)।

७) गीता में आए शरीर-रथ की उपमा भी यहाँ पाई जाती है-

"हे नचिकेता! तू आत्मा को रथ का स्वामी जान, शरीर को रथ, बुद्धि को सारथि, मन को लगाम और इन्द्रियों को अश्व जो कि अपने विषयों में विचरती हैं (कठ० १/३/३-४)।" इस प्रकार आत्मा बुद्धि द्वारा मन की लगाम से इन्द्रिय अश्वों को वश में रखती है। यह उपमा, कुछ भेद से, यजुर्वेद में पाई जाती है- **सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान् नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव** (३४/६)-

अर्थात् जिस प्रकार एक अच्छा सारथि लगाम से अश्वों को मन-वाञ्छित स्थान पर ले जाता है, वैसे ही मन मनुष्यों को इधर-उधर ले जाता है।

८) गीता में वर्णित अधोमुख पीपल वृक्ष-रूपी संसार की उपमा भी यहाँ पाई जाती है (कठ० २/३/१, गीता १५/१)।

९) मोक्षमार्ग पर अग्रसर होने के लिए गुरुओं को प्राप्त करने की आवश्यकता होती है, उपनिषद् यह बताता है। और जो इस मार्ग पर एक बार आ गया उसके लिए चेतावनी है कि इसी जन्म में परमात्मा को प्राप्त कर लो, तो अच्छा है, नहीं तो पुनः अनेकों जन्म में घूमना पड़ेगा क्योंकि अगले जन्म में क्या हो, किसे क्या पता!

१०) पतंजलि के समान, उपनिषद् बताता है कि जब शरीर, इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि- सभी स्थिर हो जाते हैं कोई चेष्टा नहीं करते, तो उसे योगावस्था कहा जाता है। इस अवस्था को कैसे प्राप्त करें, यह भी बताया गया है।

११) ब्रह्म से आत्मीयता होने पर सब दुःख दूर हो जाते हैं, सब कामनाएं छूट जाती हैं और हृदय की सब ग्रन्थियाँ (संशय) खुल जाती हैं।

१२) उपनिषद् बताता है कि मुक्तात्मा मूर्धा को जाने वाली एक नाड़ी से निकलता है और मृत्यु उसके वश में होती है- वह जब चाहे, तब तक शरीर में वास कर सकता है और जब चाहे छोड़ सकता है। इसको अन्यत्र जीवन्मुक्त दशा कहा गया है।

१३) अन्य आत्माएं अन्य दिशाओं में जाने वाली नाड़ियों से शरीर-त्याग करती हैं।

इस प्रकार हम पाते हैं कि कठोपनिषद् अध्यात्म-ज्ञान का भण्डार है। इसमें वेदों के सत्य इतने सुन्दर रूप में प्रस्तुत किए गए हैं कि भगवद्गीता जैसे ग्रन्थों ने इसके श्लोक जैसे-के-तैसे उद्धृत किए हैं। इसके अधिकतर श्लोक स्मरणीय हैं और दैनिक सन्ध्या में जोड़ने योग्य हैं, क्योंकि वे भक्ति-रस से छलक रहे हैं। कठोपनिषद् में जो आलंकारिक नचिकेता और यम की कथा है, वह वैसे तो अध्यात्म-अध्येताओं में सुप्रसिद्ध हैं, परन्तु, जैसा मैंने हाल में ही वक्ता के रूप में अनुभव किया, सामान्य जन इससे अनभिज्ञ हैं। और कुछ नहीं तो कम-से-कम यह कथा हमें घर-घर तक पहुँचानी चाहिए। बच्चों की पुस्तकों में इसे सम्मिलित करना चाहिए। यद्यपि इस कथा में अन्तर्विरोध हैं, तथापि यह इतनी मन को छूने वाली है कि इसको हमारी संस्कृति की धरोहर मानना चाहिए। और जो व्यक्ति उपनिषदों के संसार में अपने पहले पग रख रहा है, उसको सम्भवतः इसी उपनिषद् से अपनी यात्रा प्रारम्भ करनी चाहिए।

❑❑

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/७/२०१७
भार- ४० ग्राम

जुलाई 2017

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2015-17
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१५-१७
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2015-17

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-६६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट Ph. :011-43781191, 09650622778
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6 E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री
ग्राम
जि

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।